विश्व-नायक

(हज़रत मुहम्मद स० की पाक जीवनी)

कौसर यज़दानी

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
१. वंश तथा परिवार	५
२. लड़कपन और जवानी	८
३. आप पैग़म्बर होते हैं	११
४. इस्लाम का आम एलान	१४
५. हब्श को हिजरत	१९
६. एक ही धुन	२५
७. हिजरत	२९
८. इस्लामी इतिहास का नया मोड़	३३
९. सत्य-असत्य का संघर्ष	३८
१०. उहद की लड़ाई	४६
११. यहूदियों का विरोध	५१
१२. हुदैबिया की सन्धि	५६
१३. स्पष्ट विजय	५९
१४. मक्के पर विजय	६७
१५. मक्का-विजय के बाद	७३
१६. आख़िरी हज्ज और मृत्यु	८०
१७. व्यक्तित्व और परिचय	८५

कुछ बातें

जिस तरह किसी सिद्धान्त को समझने के लिए ज़रूरी है कि उसके प्रस्तुत करने वाले को जाना जाये, उसी तरह इस्लाम और उसके सिद्धान्त को समझने के लिए ज़रूरी है कि उसके पेश करने वाले सच्चे और आख़िरी नबी हज़रत मुहम्मद स० के बारे में सविस्तार जाना जाये कि वह कैसे पले-पढ़े, उनकी देख-रेख किन हाथों में हुई उस समय का वातावरण कैसा था, परिस्थितियां क्या कुछ थी, किन हालतों में आपने अपना आन्दोलन चलाया, मार्ग की बाधाऐं क्या थीं, और उनसे कैसे निबटा गया और फिर सफलता मिली तो क्यों मिली, आपके कारनामे क्या थे और क्या थे आपके मानवता पर किये गये उपहार।

संक्षेप में तैयार की गई यह पुस्तक आपके इन्हीं प्रश्नों का उत्तर देगी, ऐसा हमारा विचार है।

सच पूछिये तो यह पुस्तक 'इस्लामी इतिहास' पर तैयार की जा रही पुस्तकों की पहली कड़ी है। यदि अल्लाह ने चाहा तो आशा है कि हम इस्लामी इतिहास को एक क्रम के साथ प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकेंगे।

— कौसर यज़दानी

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह दयावान कृपाशील के नाम से'

वंश तथा परिवार

हज़रत मुहम्मद स० अरब के उस प्रतिष्ठित एवं मान्य वंश से सम्बन्ध रखते थे जिसे कुरैश कहते हैं। वैसे कुरैश का यह वंश कई पीढ़ियों से मान्य एवं प्रतिष्ठित चला आ रहा था, परन्तु जिस व्यक्ति के कारण इस वंश को "कुरैश" की उपाधि मिली, वह इब्ने कनाना थे।

आपकी यह वंशावली लगभग ६० पीढ़ियों पर हज़रत इस्माईल से जाकर मिलती है जो हज़रत इब्राहीम के पुत्र थे।

जन्म

९ रबीउल अव्वल, दिन सोमवार, तदनुसार २० अप्रैल सन् ५७१ ई० की वह कितनी शुभ प्रातः थी, जब इस विश्व-विख्यात जगतगुरू का जन्म मक्का नगर में हुआ, जिसके आगमन से सम्पूर्ण जगत की अंधियारी में सत्य-प्रकाश दीप्तमान हो उठा और मानव-जाति का जीवन-मार्ग और ईश प्रसन्नता प्राप्त करने का एक-मात्र साधन प्राप्त करने का अवसर मिला।

यह नवजात शिशु वह पैग़म्बर थे, जिनके पैदा होने की प्रार्थना हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल ने अल्लाह से की थी और कहा था :—

"हे पालनहार! हम दोनों को अपना आज्ञाकारी बना, हमारी नस्ल मे एक ऐसी जाति उठा जो तेरा आज्ञापालन करने वाली हो. हमें अपनी

भक्ति के ढंग बता और हमारी त्रुटियों को क्षमा कर दे। तू बहुत बड़ा क्षमा करने वाला और दया करने वाला है और हे पालनहार! उन लोगों में स्वयं उन्हीं की जाति में से एक ऐसा रसूल भेज जो उन्हें तेरी आयतें सुनाये, उनको किताब और हिकमत की शिक्षा दे और उनके जीवन संवारे। तू बड़ी शक्तियों वाला और कृपा करने वाला है।"

— सूरः: बक़रः १२८,१२९

यह वही मुहम्मद थे, जिनके बारे में महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्य नन्दा के कान में निम्न बात उस समय कही जब कि उनकी आखिरी सांसें चल रही थीं और उनका यह निष्ठावान शिष्य उनके पाँवों को अपनी अश्रु-धारा से यह कह कर पखार रहा था कि :-

"स्वामी! आपके जाने के बाद संसार वालों को कौन शिक्षा देगा?"

"नन्दा!" महात्मा बुद्ध ने उत्तर दिया, "मैं प्रथम बुद्ध नहीं हूँ जो पृथ्वी पर आया, न मैं अन्तिम बुद्ध हूँ। अपने समय पर एक बुद्ध और आएगा — जो अमर सत्य मैं बताता रहा हूँ, वह भी वही बतायेगा, मेरी तरह वह भी एक पूर्ण जीवन-व्यवस्था का प्रचार करेगा।"

"हम उसको कैसे पहचानेंगे" नन्दा ने पूछा।

"वह मित्तरिया[1] के नाम से प्रसिद्ध होगा।" स्वामी ने कहा।

—Leader 16 Oct. 1930

ऐसे ही पैग़म्बर मूसा ने इस बच्चे के आने की सूचना इस तरह दी थी :-

"ख़ुदा सीना से निकला, सईर से चमका और फ़ारान ही के पर्वतों से प्रकट हुआ दस हज़ार 'क़ुदसियों' के साथ।"

— पैदाइश, अध्याय १७ — २

यह वही पैग़म्बर थे, जिनके आने की हज़रत दाऊद, सुलैमान और नबी यसअयाह ने ख़ुशख़बरी दी थी, नबी हबक़ूक़, अलयसअ आदि ने भी उनके आगमन की सूचना दी।

यह वही रसूल थे जिनके आने की सूचना हज़रत ईसा ने अपने साथियों को इन शब्दों में दी थीः-

[1] मित्तरिया का अर्थ है "वह जिसका प्रेम करुणा का हो" अर्थात् 'रहमत'

"मुझे तुमसे और भी बहुत सी बातें करनी हैं पर अब तुम उसे सहन नहीं कर सकते। जब वह पुण्यात्मा आयेगा तो तुमको तमाम सच्चाई की राहें दिखाएगा, इसलिए कि वह अपनी ओर से कुछ न कहेगा, जो कुछ अल्लाह की ओर से सुनेगा, वही कहेगा और तुम्हें आगे की बातें बतायेगा।

— यूहन्ना, अध्याय १६, आयत १३-१४

यह नवजात शिशु वही मुहम्मद हैं जो बाद में अल्लाह की ओर से अपने पैग़म्बर होने का एलान इस प्रकार करते हैं :-

"मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं, ठीक उस तरह जैसे और बहुत से ईश दूत इससे पहले गुज़र चुके हैं।" — आले इमरान १४४

"मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं।" — फ़तह २९

और फिर यह वही रसूल हैं जो पूरे संसार के रसूल हैं और इनके बाद कोई दूसरा रसूल पैदा होने वाला नहीं है, जैसा कि अल्लाह का एलान है:-

"मुहम्मद तुम्हारे मर्दों में से किसी के बाप नहीं हैं, बल्कि वह अल्लाह के रसूल और ईश-दूतों के क्रम का अन्त करने वाले हैं।"

— अहज़ाब ४०

नाम

आपके जन्म पर आपके दादा अब्दुल मुत्तलिब ने अपने चहेते पोते का नाम मुहम्मद रखा जिसका अर्थ है "वह व्यक्ति जिसकी अत्यधिक प्रसंशा की जाए।"

किसी ने पूछा "तुमने अपने पोते का नाम मुहम्मद क्यों रखा? क्यों न अपने नामी पुरखों के नाम पर उसका नाम रख दिया? तुम्हारे यहाँ नामों की कमी थोड़े ही है?"

"इसीलिए कि" अब्दुल मुत्तलिब ने जवाब दिया, "मुझे पूरी आशा है कि किसी न किसी दिन यह नाम, जो मैंने रखा है, महान सिद्ध होगा और इसकी चर्चा हर जगह होगी।"

वास्तव में हुआ भी ऐसा ही, इस जगत का बच्चा-बच्चा आज तक मुहम्मद (सं.) को जानता है, भले ही उसका सम्बन्ध किसी भी संप्रदाय से हो

लड़कपन और जवानी

आप कुल छः वर्ष के हो पाये थे कि आपकी माता का एक यात्रा में देहान्त हो गया। पिता तो जन्म से पहले ही परलोक सिधार चुके थे। इस लिए माता के देहान्त के बाद आपके लालन-पालन और देख-रेख की ज़िम्मेदारी आपके दादा अब्दुल मुत्तलिब पर आ पड़ी। दादा ने बिना बाप के इस यतीम पोते को सीने से लगाया और बड़े ही लाड़-प्यार से आपको पालना शुरू किया, पर यह सिलसिला अभी कुल २ वर्ष ही चला था कि आपको भी मृत्यु ने संसार से उठा लिया। और अब आप अपने चाचा अबूतालिब के संरक्षण में आ गये।

लड़कपन

यह अल्लाह की रीति है कि वह जिसे अपने कामों के लिए चुनता है, उसके पूरे जीवन को शुद्ध, पवित्र और किसी भी प्रकार के कलंक से रहित बनाये रखता है ताकि उसके चरित्र व आचरण पर किसी प्रकार की आपत्ति न की जा सके। चूँकि हज़रत मुहम्मद स० को आगे चलकर पैग़म्बर बनाना था और पैग़म्बरी के लिए ज़रूरी था कि उनका जीवन शुद्ध, पवित्र और कलंक रहित हो, इसलिए अल्लाह ने आप में शुरू से ही सुचरित्र, लज्जा और सदाचार कूट-कूट कर भर दिया था।

लड़कपन ही का क़िस्सा है कि काबा की दीवारें ठीक की जा रही थीं। बड़ों के साथ-साथ छोटे भी उल्लासपूर्वक काम कर रहे थे। इन बच्चों में आप और आपके चचा हज़रत अब्बास भी थे। दूसरे बच्चों ने अपने-अपने तहबन्द उतार कर कन्धों पर रख लिए थे और उसी पर पत्थरों को लाद-लाद कर ला रहे थे। हज़रत अब्बास ने आप से भी कहा कि अपना तहबन्द खोलकर कन्धे पर रख लो, इस तरह पत्थरों की रगड़ से कोई

कष्ट न होगा और अरब के वातावरण में यह कोई अनोखी बात भी नहीं थी। पर जब आपने ऐसा किया, तो नंगे होने का विचार आते ही आप तुरन्त अचेत होकर गिर पड़े। जब आप सचेत हुए तो कह रहे थे, "मेरा तहबन्द, मेरा तहबन्द।" लोगों ने जल्दी से तहबन्द को कमर से बाँध दिया, तब कहीं जाकर आपकी विकलता मिटी।

ऐसे ही अल्लाह ने आपको उन तमाम ही बुराइयों व पाप के कामों से दूर रखा, जो हो सकता था, आपके जीवन का कलंक बन जाते। हाँ, आपने अगर भाग लिया तो अच्छे ही कामों में, जैसे "फ़ज़्ल वालों की सन्धि" में आपने सहर्ष भाग लिया, जिसमें तै किया गया था कि :-

(१) देश से अशान्ति दूर करेंगे,
(२) यात्रियों की रक्षा करेंगे,
(३) दीन-दुखियों की सहायता करेंगे,
(४) उत्पीड़ितों का समर्थन करेंगे, और
(५) किसी अन्यायी व अत्याचारी को मक्का में रहने न देंगे।

व्यापार

बड़े होने पर आपने कुरैश के प्रतिष्ठित लोगों का व्यवसाय अपनाया। आप अपने सद्व्यवहार व सदाचार के लिए पहले से ही मशहूर थे। इसलिए शीघ्र ही इसमें आपको बड़ी सफलता प्राप्त हुई, यहाँ तक कि आपके इन्हीं गुणों को देखकर, लोग अपनी पूँजी आपको देकर व्यापार में आप ही के साझे को अच्छा समझने लगे। वायदे को पूरा करना, मामले को साफ़ रखना, हर हाल में सच बोलना और ईमानदारी से काम लेना, यही वे गुण थे जिसके कारण आपको 'सादिक़' और 'अमीन' की उपाधि भी दे दी गई, जिसका अर्थ है सत्यवादी और अमानत वाला।

हज़रत ख़दीजा का साझा

हज़रत ख़दीजा क़ुरैश की एक धनी मानी महिला थीं। इस समय वह विधवा थीं। वह अपना रुपया व्यापार में लगातीं और दूसरों को देकर इधर-उधर भेजा करतीं। उन्होंने आपके सदगुणों को सुनकर और आपकी सच्चाई, ईमानदारी और व्यापार में दक्ष होने का हाल मालूम करके, आपको बुलाया और कहा कि आप मेरा सामान लेकर व्यापार कीजिए। मैं जितना लाभ दूसरों को देती हूँ, उससे अधिक ही आपको दूँगी। आपने इसे स्वीकार किया और उनका माल लेकर शाम (सीरिया) की ओर चल पड़े। इसमें आपको लाभ तो बहुत हुआ परन्तु बिना कुछ घपला किये आपने पूरा धन हज़रत ख़दीजा के हाथ पर रख दिया और कह दिया कि आपकी जो इच्छा हो दें।

विवाह

हज़रत ख़दीजा आपके इस प्रकार के व्यवहार से बहुत प्रभावित हुईं यहाँ तक कि आपके पास विवाह का सन्देश भी भेज दिया। आपने इसे भी स्वीकार कर लिया। उस समय आपकी आयु २५ वर्ष और हज़रत ख़दीजा की ४० वर्ष की थी। आपका ४० वर्ष की विधवा से युवावस्था में विवाह कर लेना, सच तो यह है कि रहती दुनिया तक के लिए एक अनुपम उदाहरण है और इसमें उन तमाम लोगों के लिए एक शिक्षा है जो समाज-सुधार के लिए दूसरों को तो उभारते हैं और अपने व्यवहार से न इसमें आदर्श बनते हैं और न ही इसका प्रयत्न करते हैं। साथ ही आपका यह कारनामा उन तमाम आपत्ति करने वालों का मुँह तोड़ जवाब है, जो आपको कामी, विलासी और भोगी कहते हैं। क्या कोई कामी युवक अपनी भरी जवानी को एक बूढ़ी विधवा से ब्याह कर इस प्रकार 'खराब' करने को तैयार हो सकता है, जबकि और भी बहुत सी युवतियाँ उससे विवाह पर उत्सुक हों, यह बात समझ में नहीं आती?

आप पैग़म्बर होते हैं

आप जिस युग में पैदा हुए थे वह अति अन्धकारपूर्ण युग था। मूर्ति-पूजा चरम सीमा को पहुँची हुई थी, विश्वासों में त्रुटि पैदा हो गई थी, लोगों का चरित्र भी गिर चुका था, दुनिया की कौन सी बुराई थी जो उस समय न पाई जाती रही हो। आप सोचते और अब तो प्रायः यही सोचते ही रहते कि इन लोगों को कैसे सन्मार्ग पर लाया जाये? इनको कैसे सुन्दर चरित्र व आचरण वाला बनाया जाये? इनके आचार-विचार में कैसे परिवर्तन किया जाये?

इन्हीं सब प्रश्नों पर सोचते-सोचते आपको एकान्त की ज़रूरत महसूस होने लगी और मक्का से तीन मील की दूरी पर स्थित हिरा की गुफा में आप जाकर घन्टों बैठने लगे। वहाँ आप ध्यान मग्न रहते और अल्लाह की इबादत करते रहते।

हिरा की गुफा में

एक दिन आप हिरा की गुफा में नित्य की तरह अल्लाह की याद में लगे हुये थे, रमज़ान का महीना था कि आपके सामने हज़रत जिबरईल प्रकट हुये। मानव-जाति की तरह फ़रिश्ते भी अल्लाह की रचना हैं जो दिन व रात उसी के गुण-गान और भक्ति में लगे रहते हैं। हज़रत जिबरईल भी उन्हीं फ़रिश्तों में से एक हैं। उन्होंने प्रकट होते ही कहा :-

"पढ़"

"मैं पढ़ा हुआ नहीं हूँ" आपने फ़रमाया।

यह सुनकर हज़रत जिबरईल ने आपको पकड़ कर इतना झकझोरा कि आप थक-थक गये फिर छोड़ दिया और कहाः-

"पढ़"

"मैं पढ़ा हुआ नहीं हूँ" आपने वही उत्तर दिया और उन्होंने फिर उसी तरह आपको झकझोरा और छोड़ कर कहा 'पढ़'

"मैं पढ़ा हुआ नहीं हूँ" आपने फिर वही उत्तर दिया।

अब हज़रत जिबरईल ने तीसरी बार वही किया और छोड़ कर कहा :-

"अपने पालनहार के नाम से पढ़, जिसने मनुष्य को जमे हुये ख़ून से पैदा किया। पढ़, और तेरा पालनहार तो सर्वोच्च है, जिसने क़लम द्वारा सिखाया और मनुष्य को वह कुछ बताया जिसे वह नहीं जानता था।"

यह सबसे पहली वह्य (ईश्वरीय वाणी) थी और उस समय आप ४१ वे वर्ष में प्रवेश कर चुके थे।

इसके बाद हज़रत जिबरईल का आना बन्द रहा और आप पहले ही की तरह हिरा की गुफा में जाते रहे। यह मुद्दत कम से कम छः महीने की रही।

दूसरी वह्य

हिरा की गुफा में पहली वह्य के आने के बाद जो दूसरी वह्य आई, वह सूरः मुद्दस्सिर की आरम्भिक आयतें थीं :-

"हे कमली ओढ़ने वाले! उठ (और लोगों को अल्लाह के अज़ाब से) डरा, अपने पालनहार की श्रेष्ठता को बखान, कपड़ों को पाक कर और मूर्तियों से अलग रह और अधिक प्राप्त करने की नीयत से किसी के साथ उपकार मत कर और अपने पालनहार के लिए (संकटों के आने पर) सब्र का रवैया अपना।"

आपका सन्देश

पैग़म्बरी के काम पर नियुक्त होने का यह समारम्भ था। अब आपको नियमित रूप से यह हुक्म मिल गया कि उठो और भटकती हुई मानवता को कल्याण व सफलता का मार्ग दिखाओ और लोगों को बता दो कि

सफलता का मार्ग एक और केवल एक है — अर्थात् एक अल्लाह की भक्ति और उसी का आज्ञापालन। जो कोई इसे अपनायेगा वही सफल होगा और जो कोई इसके अलावा कोई और मार्ग अपनायेगा उसे परलोक के बुरे नतीजे से डराओ। मानव-जीवन का आधार केवल एकेश्वरवाद पर होना चाहिये, तभी वह हर प्रकार की गन्दगियों — भीतरी व बाहरी, से पाक रह सकता है। अल्लाह के अलावा किसी और की भक्ति और आज्ञापालन; यही वह विष की गाँठ है जो मानव-विनाश का कारण बनती है। मनुष्यों को आपस में सुन्दर व्यवहार करना चाहिये। ऐसा सुन्दर व्यवहार जिसका आधार किसी स्वार्थ या लालच पर न हो।

यही वह सन्देश था जिसकी ओर आपने लोगों का ध्यान आकृष्ट किया और यही वह सन्देश है जिसका दूसरा नाम 'इस्लाम' है।

सबसे पहले मुसलमान

अरब के जिस वातावरण में आपने इस्लाम का यह सन्देश प्रसारित किया, उसमें रहकर इस सन्देश को मानना और उसको अपने जीवन का उद्देश्य बनाना कोई आसान बात न थी, फिर भी जो आपके सदाचरण की पूरी जानकारी रखते थे और जिन्हें ईमान की मिठास मिल जाती थी, वे इसे सीने से चिपटा लेते और इसकी सुरक्षा में तन-मन-धन की भी बाज़ी लगाने में न झिझकते। ऐसे लोगों में सबसे ऊपर जिनका नाम आता है वे हैं हज़रत ख़दीजा आपकी धर्म-पत्नी, हज़रत अली, आपके चचेरे भाई, हज़रत ज़ैद आपके सेवक और हज़रत अबूबक्र आपके गहरे दोस्त। फिर इसके बाद हज़रत उस्मान, हज़रत ज़ुबैर, हज़रत अब्दुर्रहमान इब्ने औफ़, हज़रत साद इब्ने अबी वक़्क़ास और हज़रत तलहा ईमान लाये। इस तरह इस्लाम का सन्देश धीरे-धीरे फैलता रहा और मुसलमानों की संख्या भी बराबर बढ़ती ही रही।

इस्लाम का आम एलान

इस्लाम का प्रचार आरम्भ के तीन साल तक तो भीतर ही भीतर होता रहा, फिर इसके बाद एक दिन हुज़ूर सफ़ा पर्वत पर चढ़ गये और वहाँ खड़े होकर पुकारना शुरू कर दिया। ऐसा उसी समय किया जाता जबकि कोई भयानक विपदा आ पड़ी हो। क़ुरैश के लोग जमा होने शुरू हो गये। इन लोगों में आपका चचा अबूलहब भी था, जब लोग जमा हो गये तो आपने कहना शुरू किया, "लोगो! अगर मैं तुमसे यह कहूँ कि इस पहाड़ के पीछे एक बड़ी सेना ने पड़ाव डाल दिया है और तुम पर आक्रमण करना ही चाहती है तो क्या तुम मेरी बात को सच मानोगे?"

"निश्चय ही सच मानेंगे" लोगों ने कहा, "आपने अब तक कोई बात झूठ नहीं कही है और हम आप ही को सच्चा और अमानतदार जानते हैं।"

"लोगो!" तब आपने कहना शुरू किया, "मैं तुम्हें एक अल्लाह की भक्ति की ओर बुलाता हूँ और मूर्ति-पूजा से बचाना चाहता हूँ, पर अगर मेरी बात तुम नहीं मानोगे तो मैं तुम्हें एक कठोर और दुखद दण्ड से डराता हूँ।"

इस्लामी सन्देश का यह आम एलान था, यह एलान कोई मामूली एलान न था, इसने क़ुरैश और दूसरे लोगों में एक आग-सी लगा दी और हर ओर इसकी चर्चा और कानाफूसियाँ होने लगीं।

उस समय तक इस्लामी संस्था में ४० से कुछ ही अधिक आदमी दाख़िल हुये थे।

फिर एक दिन आपने काबा के आँगन में जाकर एकेश्वरवाद का एलान कर दिया। उस समय के ३६० मूर्तियों वाले काबा में यह एलान करना ही था कि एक दंगा-सा शुरू हो गया। हर ओर से लोग आप पर टूट पड़े। हज़रत हारिस इब्ने अबी हाला आपकी मदद के लिए दौड़े पर

उन पर चारों ओर से इतनी तलवारें पड़ीं कि वे शहीद हो गये। इस्लाम की राह में यह पहले शहीद थे।

यह विरोध क्यों?

इस्लाम के इस सन्देश के सबसे बड़े विरोधी क़ुरैश थे। इनका विरोध इसलिये नहीं था कि उन्हें आपके चरित्र व आचरण पर विश्वास न था, या आपके सत्यवादी होने में उन्हें सन्देह था, यह आप के सन्देश और सिद्धान्त को वे फुसफुसा और निराधार समझते रहे हों और उसकी जगह पर अपने सिद्धान्त और अपनी व्यवस्था को ही मानवता के लिये कल्याणकारी समझते रहे हों, इनमें से कोई बात भी तो नहीं थी, बल्कि मूल कारण यह था कि इससे उनकी दुनिया छिन रही थी, उनकी चौधराहट छिन रही थी उनकी प्रसिद्धी ख़तरे में थी, उनके पुरखों की रस्में टूट रही थीं और उनका नेतृत्व पानी में मिल रहा था। इसीलिए उन्होंने डटकर विरोध किया; यहाँ तक कि वे हिंसा पर उतर आये। ऐसे ही हर युग में सत्य की आवाज़ जब उठती है, समय के नेता उसके घोर विरोधी बन जाते हैं, यही पहले भी होता रहा है, यही अब भी होता है और इतिहास अपने को ऐसे ही दुहराता रहता है। फ़िर साथ ही यह बात भी स्पष्ट रहनी चाहिये कि जैसे हज़रत मुहम्मद स० के समय में सत्य ही विजयी बनकर रहा, वैसे ही सत्य सदा विजयी बनकर रहा है और आज भी उसके विजयी बनने में कोई सन्देह नहीं।

आज़माइशें और मुसीबतें

इस्लाम के इस आन्दोलन के ज़ोर पकड़ते ही विरोधियों ने इसके उन्मूलन की कोशिशें शुरू कर दीं। इस सिलसिले में उन्होंने निम्न चालों से काम लिया। यहाँ यह बात स्पष्ट कर दी जाये तो उचित होगा कि ठीक यही या इसी से मिलती-जुलती चालें पहले भी चली जाती रही हैं और आज भी विरोधी यही चालें सत्य- आन्दोलनों के विरुद्ध चलते हैं। उनकी

चालें इस तरह थीं :-

(१) सबसे पहले तो उन्होंने इस्लाम का, पैग़म्बर का और किताब (क़ुरआन) का उपहास करना शुरू किया ताकि इनके ज़ोर को खत्म कर दें।

(२) फिर ग़ाली पर उतर आये और ग़लत क़िस्म के प्रोपेगेंडे शुरू किये। आपको पागल, मजनूं, और आपके सन्देश को 'पागल की बड़', 'कवि की बकवास' और 'पिछलों की कहानियां' कह कर जनता को आपसे बिदकाने लगे।

(३) फिर दलीलों का जब जवाब न बन पड़ा तो हठ और अनुचित आग्रह पर उतर आये और उन्होंने हर सत्य बात को इस लिये झुठलाना शुरू कर दिया कि वह उनके विचारों व सिद्धान्तों के विरुद्ध क्यों है?

(४) जब इससे भी बात न बनी और सत्य फैलता ही रहा तो उन्होंने गुण्डागर्दी शुरू कर दी, यहाँ तक कि आपके रास्ते में काँटे बिछाये जाने लगे, आप पर चलते समय ऊपर से कूड़ा-करकट डाल दिया जाता, सज्दे में आप पर ओझड़ी डाल दी जाती, हद यह है कि एक बार तो गला घोंटने ही का षड्यन्त्र रच लिया गया। इधर यह सब कुछ होता रहा फिर भी सत्य फैलता ही रहा। उनकी ये बाधायें उसके प्रचार में बाधक तो क्या बनतीं, सहायक ही बनीं।

(५) जब ऐसे भी काम न चला तो शत्रुओं ने आपके समर्थकों को तोड़ने की कोशिश की और आपके हमदर्द व हिमायती बनकर आपको अपने पथ से डिगाना चाहा, पर यहां भी वे अपनी चाल में सफल न हो सके। आपके चचा अबूतालिब के मन को भी, जिनके संरक्षण में आप थे, आपकी ओर से खट्टा करना चाहा, पर सत्य के सामने ये ओछे वार कभी कामियाब भी होते हैं कि उसी समय होते, और वे विफल रहे।

(६) जब इसमें भी सफलता न मिली, तो उन्होंने संगठित होकर और एक अनुशासन में अपने को जकड़ कर उसे कुचलना चाहा और इसके लिए उन्होंने ज़बरदस्त मोर्चा भी बना लिया, मुहम्मद स० और आपके साथियों को सताना, उन्हें हर प्रकार का कष्ट देना, मानो यही उनका उद्देश्य बन चुका था।

(७) फिर उन्होंने इस्लाम की आवाज़ को मक्का से बाहर फैलते देखकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक मोर्चा बनाया और हज्ज के मौक़े पर या दूसरे मौक़े पर जब कोई मिल जाता तो उसे इसलाम और उसके अनुयायियों से सचेत करते और उसके कान विरोध से भर देते। पर ऐसे प्रोपेगेण्डे तो सत्य के फैलने में सहायक ही होते हैं। सुनने वाला व्यक्ति इस्लाम के सही रूप को समझने के लिए उत्सुक हो उठता और सत्य को समझने के बाद वह उस पर ईमान लाये बिना न रहता।

(८) जब ये तमाम कोशिशें बेकार सिद्ध होने लगीं, तो उन्होंने सौदेबाज़ी शुरू कर दी। उन्होंने ऐसा प्रयत्न किया कि समझौते की कोई राह निकले और कुछ मानकर और कुछ मनवाकर झगड़ा चुकाया जाए, पर सत्य में इतनी लचक तो होती नहीं कि जिधर चाहे और जब चाहे झुक जाए, अतएव इसमें भी वे निराश हुये।

परिणाम यह निकला कि विरोध बढ़ता रहा, इस्लामी सन्देश फैलता रहा, इस्लाम के अनुयायियों की संख्या बढ़ती रही, मुसलमान सताये जाते रहे और उन पर विपत्तियों के पहाड़ तोड़े जाते रहे — और सत्य विजयी होता रहा।

दमन व अत्याचार की नीति

अन्ततः इस्लाम की बढ़ती शक्ति और मुसलमानों की बढ़ती संख्या को देखकर शत्रुओं ने दमन व अत्याचार की नीति अपना ली। कभी उन्हें कड़ी धूप में गर्म बालू पर लिटा देते, छाती पर पत्थर रख देते, कभी कुछ करते और कभी कुछ। और यही उस समय का सबसे कठोर दंड था। कुछ नमूने देखिये :-

हज़रत ख़ब्बाब को क़ुरैश ने एक दिन कोयले जलाकर, उस पर चित्त लिटा दिया, फिर ऊपर से एक व्यक्ति ने छाती पर पाँव रख कर दबाया कि करवट न बदल सकें, यहाँ तक कि कोयले पीठ के नीचे ठंडे हो गये।

हज़रत बिलाल को उमैया ठीक दोपहर में जलती हुई रेत पर लिटाता

और भारी पत्थर सीने पर रख देता और कहता :-

"इस्लाम से इन्कार कर, नहीं तो यों ही घुट-घुटकर मर जाएगा।"

"पर उस समय भी, कष्ट व पीड़ा की इस स्थिति में आपके मुखसे "अल्लाह एक है" की आवाज़ निकलती। फिर उमैया उनके गले में रस्सी बाँधकर लड़कों के सुपुर्द कर देता और वे उन्हें नगर के एक हिस्से से दूसरे हिस्से तक घसीटते फिरते।

हज़रत अम्मार को क़ुरैश गर्म बालू पर लिटा कर इतना मारते कि वह बेहोश हो जाते।

हज़रत लुबनिया को हज़रत उमर अपने मुसलमान होने से पहले इतना मारते, इतना मारते कि स्वयं थक कर बैठ जाते।

हज़रत ज़ुबैर को एक बार अबू जहल ने इतना मारा कि उनकी आँखें जाती रहीं।

हज़रत उस्मान जब मुसलमान हुए तो उनके चाचा ने उन्हें रस्सी में बाँधकर मारा।

हज़रत साद इब्ने ज़ैद और उनकी पत्नी जो हज़रत उमर की बहन थीं, इन दोनों को हज़रत उमर इस्लाम लाने से पहले रस्सी से जकड़ देते थे।

हज़रत ज़ुबैर मुसलमान हुए तो उनके चचा उनको चटाई में लपेट कर उनकी नाक में धुंआ देते थे। यह थीं वह वस्तुस्थिति जिस में मुसलमान घिरे हुये थे।

हब्श को हिजरत

जब आपने यह अन्दाज़ा कर लिया कि दमन की यह नीति खत्म होने वाली नहीं और बहुत से मुसलमान ऐसे हैं जो किसी भी कष्ट व पीड़ा के आगे हथियार तो न डालेंगे, पर बहरहाल विपत्तियाँ सहन शक्ति से बाहर होती जा रही हैं और उनके लिये इस्लामी कर्तव्यों को पूरा करना भी कठिन होता जा रहा है तो आपने यह निर्णय किया कि कुछ मुसलमान हब्श[1] को हिजरत[2] कर जायें।

इस हिजरत से जहाँ एक लाभ यह था कि कुछ मुसलमान क़ुरैश के अत्याचारों से सुरक्षित हो जायेंगे, वहीं एक बड़ा ध्येय यह भी था कि ये प्राण पर खेल जाने वाले साथी इस्लाम के सन्देश को दूर-दूर तक फैलाने का मौक़ा पा सकेंगे।

इस तरह कुछ मुसलमानों ने हब्श की राह पकड़ी।

हब्श के राजा को "नजाशी" कहते हैं जिसने इन मुसलमानों को शान्तिपूर्वक आश्रय दिया।

हब्श के दरबार में इस्लाम का सन्देश

क़ुरैश को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने नजाशी के पास अपने दो दूत भेजे कि ये हमारे अपराधी हैं। इन्हें हमको सुपुर्द कीजिये। क़ुरैशियों की इस प्रार्थना पर नजाशी ने मुसलमानों को बुला भेजा और पूछा :-

---

१. लाल सागर के तट पर बसा अफ़्रीक़ा का राज्य।

२. अपना असली घर और माल असबाब छोड़कर ईश्वर के लिये एक नगर से दूसरे नगर या एक राज्य से दूसरे राज्य को चले जाने को हिजरत कहते हैं।

"यह तुमने कौस-सा नया धर्म अपना रखा है?"

मुसलमानों ने अपनी ओर से बातचीत करने के लिए हज़रत जाफ़र (हज़रत अली क़े भाई) को अपना नुमाइन्दा नियुक्त किया। उन्होंने जो वक्तव्य दिया, उसका सार इस तरह है :-

"हे राजा! हम एक-मुद्दत से अज्ञान व पथ-भ्रष्टता की अंधियारियों में भटक रहे थे। एक अल्लाह को भूलकर सैकड़ों मूर्तियों की पूजा करते थे। मुर्दार खाते थे, ज़िना, लूट-मार चोरी और एक दूसरे के प्रति अत्याचार करना हमारा रात-दिन का काम था, हमारा हर ताक़तवर अपने से कमज़ोर को खा जाने पर गर्व का अनुभव करता था; तात्पर्य यह कि हमारा जीवन पशुओं से भी गया गुज़रा था। अल्लाह की मेहरबानी कहिये कि उसने हमारी दशा बदल दी। हम में से एक ऐसा व्यक्ति पैदा हुआ जिसे अल्लाह ने अपना रसूल बनाया, हम उसकी वंशावली जानते हैं, वह अति सज्जन है। हम उसकी हालतों को जानते हैं, वह सच्चे, अमानतदार और निष्कलंक हैं क्या मित्र और क्या शत्रु सभी उसकी साधुता, सज्जनता को स्वीकार करते हैं। उसने हमें इस्लाम की ओर बुलाया और यह सिखाया कि हम मूर्तियों को पूजना छोड़ दें, केवल एक अल्लाह को अपना स्वामी स्वीकार करें और उसी का आज्ञापालन करें, सच बोलें, लूट-मार से रुक जायें, यतीमों का माल न खायें, पड़ोसियों की सहायता करें, ज़िनाकारी और दूसरी गन्दी बातों से बचें, नमाज़ पढ़ें, रोज़े रखें, अल्लाह की राह में अपना धन लगायें, दीन-दुखियों की मदद करें। हम उस पर ईमान ले आये, अनेकेश्वरवाद और मूर्ति-पूजा को छोड़ दिया, तमाम बुरे कामों से तौबा कर ली। इस पर हमारी जाति वाले हमारे शत्रु हो गये और हमें बाध्य करते रहे कि हम फिर पलट कर उन्हीं के धर्म पर आ जायें और इसी उद्देश्य के अन्तर्गत अब ये लोग आप से हमारी वापसी की मांग कर रहे हैं।"

नजाशी ने कहा :-

"अच्छा तुम्हारे नबी पर अल्लाह का जो कलाम (ईश-वाणी) उतरा

है, उसका कुछ हिस्सा पढ़ कर सुनाओ?"

हज़रत जाफ़र ने सूरः मरियम की कुछ आयतें पढ़कर सुना दीं। नजाशी पर बड़ा असर हुआ और उसकी आँखों से आँसू जारी हो गये, बोला :-

"ख़ुदा की क़सम! यह वाणी और इंजील दोनों एक ही दीप की दो बत्तियाँ हैं।"

यह कह कर उसने क़ुरैश के लोगों से साफ़ कह दिया कि ये मुसलमान आपके सुपुर्द नहीं किये जायेंगे।

एक और चाल

लेकिन दूसरे दिन क़ुरैश ने एक और चाल चली। दरबार में जाकर कहा कि तनिक इन मुसलमानों से यह तो पूछिये कि इनके हज़रत ईसा के बारे में क्या विचार हैं। क़ुरैश जानते थे कि मुसलमान तो ईसाइयों के विश्वास के विरुद्ध हज़रत ईसा को ईश्वर का बेटा कहने के बजाय मरियम का बेटा कहते हैं और जब यह बात नजाशी के सामने आयेगी तो वह निश्चय ही मुसलमानों से फिर जायेगा – कैसी थी यह चाल और कैसी थी यह डिप्लोमेसी।

नजाशी ने मुसलमानों को दुबारा दरबार में बुलाया। पूछे जाने पर हज़रत जाफ़र ने खुलकर और सही-सही तमाम बातें बता दीं। उन्होंने बताया कि :-

"हमारे पैग़म्बर ने हमें बताया है कि हज़रत ईसा अल्लाह के दास और उसके पैग़म्बर थे।" यह सुनकर नजाशी ने ज़मीन से एक तिनका उठा लिया और कहा :-

"ख़ुदा की क़सम! जो तुमने कहा, ईसा इस तिनके के बराबर भी इससे अधिक न थे।"

इस तरह क़ुरैश की यह चाल भी बेकार गई। मुसलमान हब्श में शान्तिपूर्वक रहने लगे। फिर उनकी संख्या भी बढ़ने लगी, यहाँ तक कि वे ८३ तक पहुँच गये।

हज़रत हमज़ा और हज़रत उमर का इस्लाम

एक ओर वस्तुस्थिति वह थी जिसका उल्लेख किया गया और दूसरी ओर शत्रुओं के 'बड़े' भी टूट-टूट कर इस्लाम की गोद में शरण लेने पर तैयार होते गये। इनका इस्लाम का अपना लेना किसी लालच या लोभ के कारण न था, बल्कि इस्लाम की सत्यता, उसके सन्देश का व्यावहारिक होना, ये ही ऐसी चीज़ें थीं जो उन्हें इस्लाम की ओर आकर्षित करतीं और वे मुसलमान होने पर मजबूर होते। इनमें से हज़रत हमज़ा और हज़रत उमर के ईमान व इस्लाम ने तो शत्रुओं में खल बली मचा दी। इन दोनों के इस्लाम लाने के बाद इस्लाम की शक्ति अधिक बढ़ गई यहाँ तक कि मुसलमान अभी तक अपने धार्मिक कर्तव्यों (जैसे नमाज़ आदि) को खुल्लम-खुल्ला नहीं पूरा करते थे और काबे में जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ना तो सम्भव ही नहीं था, पर अब तो खुल्लम-खुल्ला काबा के आँगन में नमाज़ जमाअत के साथ पढ़ी जाने लगी और इसमें किसी भी प्रकार के भय का अनुभव नहीं किया गया।

सामाजिक बहिष्कार (Social Boycott)

इस्लामी सन्देश को फैलता देख कुरैश के सरदार बराबर विचारमग्न रहने लगे, यहाँ तक कि उन्होंने इस्लाम को कुचलने की एक और भयानक चाल चली। तमाम क़बीलों ने मिलकर यह निश्चय किया कि कोई भी व्यक्ति हुजूर के पूरे परिवार के साथ जिसका नाम 'बनूहाशिम' था, न कोई नाता जोड़ेगा, न उनके साथ क्रय-विक्रय करेगा, न उनसे मिलेगा और न उनका खाने-पीने का कोई सामान देगा, जब तक कि वे खुद मुहम्मद को क़त्ल के लिये हमारे हाथ में न दे दें। यह समझौता लिखकर काबे के दरवाज़े पर लगा दिया गया। कितनी भयानक थी यह चाल, इस्लाम के पनपते पौधे की जड़ पर कुल्हाड़ी चलाने वाला कैसा था यह बहिष्कार!!

पर अबूतालिब अपने परिवार वालों को लेकर पहाड़ के एक दर्रे में

चले गए जो "शाबे अबी तालिब" कहलाता है और विरोधियों की इस मांग को पूरा न होने दिया। यहीं दूसरे मुसलमानों ने भी आकर शरण ली। इस दर्रे में इन लोगों को हजूर के साथ तीन वर्ष तक बड़े ही कष्ट का जीवन बिताना पड़ा। एक समय ऐसा भी आया कि इन लोगों को पत्ते खा-खा कर भूख मिटानी पड़ी और वे सूखा हुआ चमड़ा उबालकर खाने पर मजबूर हुए। बच्चे जब भूख से बिलबिलाते थे तो क़ुरैश के क्रूर व वज्रहृदय प्रसन्न होते और कहते, 'देखा अब पता चलेगा इन विधर्मियों को।' किसी-किसी को दया आती तो वह छिपाकर कुछ खाने को भेज देता।

जब लगातार ३ साल तक बनू हाशिम अपनी सहनशीलता का परिचय कराते रहे तो अन्त में इन्हीं दुष्टों में से कुछ को दया आई और इस अत्याचारपूर्ण निश्चय को भंग कर दिया गया।

अबूतालिब और हज़रत ख़दीजा का देहान्त (सन १० नव०)

अभी आप और आपके परिवार वालों को सामाजिक बहिष्कार से मुक्ति मिली ही थी कि आपके प्रिय चचा अबूतालिब का देहान्त हो गया। और अभी कुछ ही महीने बीते थे कि आपकी अर्द्धांगिनी हज़रत ख़दीजा भी परलोक को सिधारीं। इस तरह एक ही वर्ष के भीतर आपके सिर से उन दोनों का साया उठ गया जो एक ओर तो आपके लिए प्राण की बाज़ी भी लगा देते थे, पर दूसरी ओर जिनकी उपस्थिति में क़ुरैश की आप पर हाथ उठाने की हिम्मत नहीं पड़ती थी इस तरह इन दोनों की मृत्यु ने उस ढाल को भी उठा लिया जो हर समय आपकी सुरक्षा करती रहती थी।

इसका परिणाम वही हुआ जो होना था। आपके शत्रुओं का विरोध अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया और अब तो आपकी जान भी ख़तरे में रहने लगी।

तायफ़ की ओर

एक ओर मक्का वालों की क्रूरता, निष्ठुरता और निर्दयता बढ़ती जा

रही थी, दूसरी ओर आपके सन्देश के प्रचार व प्रसार में तन्मयता भी दिन-दूनी रात चौगुनी तरक़्क़ी पर थी। आपने सोचा कि मक्के से बाहर भी सन्देश पहुँचना चाहिए। अतएव इसी भावना के अन्तर्गत आपने तायफ़ की यात्रा की। तायफ़ मक्के से ४० मील दूर एक हराभरा नगर है जहाँ के धनी-मानी अधिक प्रसिद्ध थे। पर दुख की बात है कि सदा की भांति वहाँ के सरदारों ने भी आपके सन्देश की सुनी-अनसुनी कर दी। एक सरदार ने तो यहाँ तक कह दिया :-

"क्या ख़ुदा को तेरे सिवा और पैग़म्बर मिला ही नहीं?" दूसरा बोलाः – "मैं तो तुझसे बात नहीं कर सकता, अगर तू सच्चा है तो तुझसे बात करना सभ्यता के विरुद्ध है और झूठा है तो तू मुँह लगाने योग्य नहीं।" तात्पर्य यह कि इन "बड़ों" ने उपहास ही में सत्य सन्देश को उड़ा दिया। फिर केवल इतना ही नहीं कि उन्होंने आपकी बातों पर ध्यान नहीं दिया बल्कि शहर के ग़ुण्डों और बदमाशों को इशारा कर दिया जो आपके पीछे लग गए और पत्थर मार-मार कर आपको घायल कर दिया। इस मौके पर इतना रक्त बहा कि आपका जूता उससे भर गया, पर दुष्ट बराबर पत्थर मारते और गालियाँ देते रहे। किसी प्रकार आपने एक बाग़ में शरण ली, तब जाकर जान बची।

एक ही धुन

यह आपकी हिम्मत थी, आपका साहस था और सत्य सन्देश को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने की एक धुन थी जो आपको तायफ़ ले गई, जिससे आप हज्ज के समय तमाम क़बीलों से मिलते फिरे और उन्हें इस्लाम के सन्देश से परिचित कराते रहे।

जब हज्ज के मौक़े पर पूरे अरब के तमाम ही क़बीले मक्का आते तो आप एक-एक क़बीले के पास जाते, उन्हें इस्लाम का सन्देश पहुँचाते, जीवन को सफल बनाने की एकमात्र विधि बताते।

इसी तरह अरब में जहां-जहां भी बड़े मेले लगते और लोग जमा होते, वहाँ आप पहुँचते और इस्लाम के सन्देश का प्रचार करते। क़ुरआन की आयतें सुनाते और इस तरह सुनाते कि वे सुनने वालों के मनों को जीत लें।

अतएव वही होता जो होना चाहिये; लोग ध्यान से सुनते और प्रभावित होते। आपके इन अथक प्रयत्नों से इस्लाम अब मक्का तक सीमित न रहा बल्कि उसका परिचय अरब के दूर-दूर के क़बीलों में भी हो गया।

मदीना में इस्लाम

इस्लाम की आवाज़ जिस प्रकार अरब के दूर-दूर के क्षेत्रों में पहुंच रही थी, उसी प्रकार मदीने में भी पहुँची। मदीना में दो प्रसिद्ध क़बीले औस और खज़रज थे। इनके आस-पास यहूदी धर्म और जाति के लोग बसे हुए थे। यहूदियों के ग्रन्थ में अन्तिम पैग़म्बर के प्रकट होने का वर्णन तो था ही, वे अपनी सभाओं में भी प्रायः इसके उत्पन्न होने का वर्णन किया करते थे और कहा करते थे कि दुनिया में एक पैग़म्बर और आनेवाला

है, जो कोई उनका साथ देगा वही सफल होगा। यही सब बातें औस व ख़ज़रज वालों ने भी सुन रखी थीं।

सन् १० न० की बात है कि हज के मौक़े पर आपने 'अक़्बा' के पास ख़ज़रज के कुछ लोगों को इस्लाम के सन्देश से परिचित कराया और क़ुरआन की कुछ आयतें पढ़ कर सुनाईं। इसे सुनकर वे बहुत प्रभावित हुए और समझ गये कि हो न हो यही वह नबी हैं जिनके बारे में यहूदी विद्वान कहते हैं कि अल्लाह के एक पैग़म्बर और आने वाले हैं। उन लोगों ने एक दूसरे की ओर देखा और कहा :

"कहीं ऐसा न हो कि इस नबी पर ईमान लाने में यहूदी हमसे आगे बढ़ जायें।" इतना कहकर उन लोगों ने इस्लाम ग्रहण कर लिया इनकी संख्या कुल छः थी।

अक़्बा की पहली प्रतिज्ञा

दूसरे साल मदीना के १२ व्यक्ति आपकी सेवा में उपस्थित हुए और इस्लाम के लिए तन-मन-धन अर्पण कर देने की प्रतिज्ञा की। उन लोगों ने इस बात की इच्छा भी प्रकट की कि इस्लाम की शिक्षा के लिए कोई उनके साथ भेजा जाये आपने हज़रत मुसअब इब्ने उमैर को उनके साथ मदीना भेज दिया। वह मदीने में घर-घर जाकर इस्लाम का सन्देश पहुंचाते और लोगों को क़ुरआन पढ़-पढ़कर सुनाते इस तरह प्रतिदिन दो-एक आदमी इस्लाम ग्रहण करने लगे। औस क़बीले के सरदार हज़रत साद इब्ने मुआज़ ने भी उसी समय इस्लाम ग्रहण किया। आपका मुसलमान होना क्या था मानो पूरे औस क़बीले का इस्लाम ग्रहण करना था।

अक़्बा की दूसरी प्रतिज्ञा

अगले साल ७२ आदमी हज्ज के समय में उपस्थित हुए और अपने साथियों से छिपकर अक़्बा में आपके सामने इस्लाम ग्रहण किया और प्रतिज्ञा की कि हर प्रकार की नर्म-गर्म स्थिति में आपका साथ देंगे। आपने

जिन बातों का वचन लिया, वे इस प्रकार थीः

(१) एक अल्लाह के अलावा किसी दूसरे की भक्ति न करेंगे,

(२) चोरी नहीं करेंगे,

(३) ज़िना नहीं करेंगे,

(४) अपनी औलाद को क़त्ल नहीं करेंगे,

(५) किसी पर आरोप नहीं लगायेंगे, न किसी की बुराई करेंगे, और

(६) अल्लाह के रसूल उनको जिस अच्छी बात का हुक्म देंगे, वे उससे मुँह न मोड़ेंगे।

वचन लेने के बाद आपने फ़र्मायाः –

"अगर तुम इन शर्तों को पूरा करोगे तो तुम्हारे लिए स्वर्ग की शुभ-सूचना है, और अगर नहीं, तो तुम्हारा मामला अल्लाह के हाथ में है, चाहे तुम्हें क्षमा करे और चाहे तो न करे।"

इसी मौक़े पर मदीना के इन नव-मुस्लिमों ने आपको यह वचन भी दिया कि अगर आप किसी समय मदीना पधारें तो मदीना वाले हर क़ीमत पर आपका साथ देंगे।

इस्लामी समाज का निर्माण

इस्लाम की फैलती हुई शक्ति और मुसलमानों की बढ़ती हुई संख्या को देखकर यह अनिवार्य हो गया था कि इस्लामी समाज का निर्माण किया जाये और उसके लिए एक निर्देशिका (Directory) तैयार की जाए जो इस्लामी-जीवन व्यवस्था स्थापित करने में सुगमता पैदा करे। उस समय की तैयारी की गयी निर्देशिका इस प्रकार थी : –

(१) अल्लाह के साथ किसी दूसरे को साझी न बनाया जाए,

(२) माता-पिता का आदर और उनका आज्ञापालन किया जाये,

(३) नातेदारों, ग़रीबों और मुसाफ़िरों के हक़ अदा किए जायें, और इसमें तनिक भी कोताही या कमी न होने पाये,

(४) फ़ज़ूलख़र्ची न की जाये, या बिल्कुल ही हाथ तंग न किया जाए,

(५) ग़रीबी के भय से औलाद को क़त्ल न किया जाये, रोज़ी पहुँचाना तो अल्लाह का काम है,

(६) ज़िना के क़रीब भी न जाया जाए, ताकि समाज में बुराइयाँ न पनपने पायें,

(७), अकारण किसी की जान न मारी जाये, ताकि समाज में शान्ति का वातावरण बाक़ी रहे,

(८) यतीमों से सुन्दर व्यवहार किया जाये,

(९) वायदा पूरा करने में कोताही न की जाए, इसलिये कि अल्लाह के यहाँ वायदे के बारे में पूछताछ होगी।

(१०) नाप-तौल में पैमाने और तराज़ू को ठीक रखा जाये,

(११) जो बात न मालूम हो, उसके पीछे न पड़ा जाएं, इससे सम्बन्ध खराब होते हैं,

(१२) ज़मीन पर अकड़ कर न चला जाए, यह गिरा हुआ आचरण है।

हिजरत

मदीना में जब इस्लाम बड़ी हद तक फैल गया तो आपने आम मुसलमानों को जो मक्का में शत्रुओं के हाथों सताये जा रहे थे, इस बात की आज्ञा दे दी कि वे मदीना को हिजरत कर जायें। धीरे-धीरे आपके बहुत से साथी मदीना चले गये (आपके तमाम साथियों को सहाबा कहते हैं) और आपके साथ हज़रत अबूबक्र और हज़रत अली रह गये या कुछ ऐसे मुसलमान रह गये जो किसी कारण से जाने में समर्थ न थे।

आपके क़त्ल का षड्यन्त्र

सन् १३ न० के आरम्भ तक तो सहाबा की एक बड़ी संख्या मदीना जा चुकी थी। अब क़ुरैश ने देखा कि मुसलमान तो मदीना में जाकर ताक़त पकड़ते जा रहे हैं और वहां इस्लाम फैलता जा रहा है, तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई और उन्होंने इस्लाम के उन्मूलन की आख़िरी चाल चली। वह यह कि सब मिलकर एक साथ मुहम्मद के घर को घेर लें और जब आप सुबह में बाहर आयें तो उन्हें क़त्ल कर दिया जाये।

हुज़ूर को भी अल्लाह द्वारा इन षड्यन्त्रों की सूचना मिलती रही और जिस रात वे अपनी चाल चलने वाले थे, उसी रात में अल्लाह का इशारा पाकर आपने हिजरत का विचार कर लिया।

क़ुरैश एक ओर तो आपके घोर शत्रु थे, दूसरी ओर आप ही को ऐसा अमानतदार समझते थे कि अपनी अमानतें और माल आपके पास लाकर रख जाया करते थे।

रात में आपने हज़रत अली को बुलाया और फ़रमाया कि मुझे हिजरत का हुक्म मिल चुका है। मैं आज रात मदीना के लिए चल पड़ूँगा।

मेरे पास बहुत से लोगों की अमानतें जमा हैं, इसे तुम सुबह उन लोगों को वापस कर देना और आज रात तुम मेरे बिस्तर पर सो रहना ताकि देखने वाले यही समझते रहें कि मैं घर में मौजूद हूं। जब रात अधिक हो गई तो आप चुपके से निकले, इस तरह कि घेरा डालने वालों को ख़बर तक न हुई। आप हज़रत अबूबक्र के मकान पर पहुँचे, वहां उनके साथ चलकर सौर की गुफा में जा छिपे। इस गुफा में ये लोग तीन दिन तक छिपे रहे।

मदीना को चले

चौथे दिन आप सौर की गुफा से निकले और एक रात और दिन बराबर चलते रहे। आपके मदीना पहुँचने की ख़बर मदीना वालों को पहले ही पहुँच चुकी थी। मदीना वालों को आपका बड़ा इन्तज़ार था। दूर से आपको आता देखकर पूरा नगर 'अल्लाहु अकबर' के नारों से गूंज उठा और ख़ुशी से लोगों के चेहरे खिल उठे।

मदीना से ३ मील की दूरी पर 'क़बा' एक जगह है। यहाँ मदीना के बहुत से परिवार बसे हुये थे. उनमें से अम्र इब्ने औफ़ के परिवार में आप उतरे। क़बा में ८ रबीउल अव्वल तदनुसार २० सितम्बर सन् ६१२ ई० को आप पहुँचे थे।

क़बा में सबसे पहला काम आपने यह किया कि एक मस्जिद की नींव डाली और दूसरे साथियों के साथ मिलकर स्वयं इस मस्जिद की दीवारें उठाईं। कुछ दिनों के बाद आप मदीना की ओर चल पड़े। मदीना में आप ने हज़रत अबू अय्यूब अन्सारी[1] को उनके यहाँ ठहरने का सौभाग्य प्रदान किया। यह मकान वहाँ था जहाँ इस समय मस्जिदे नबवी है। आप वहाँ कुल ७ महीने रहे, इसके बाद जब मस्जिदे नबवी के पास आपके कमरे तैयार हो गये तो आप वहाँ चले गये।

[1]मदीना के वे तमाम मुसलमान अन्सार कहे जाते हैं जिन्होंने मुहाजिरों की मदद की और मुहाजिर वे हैं जो ईश-मार्ग में अपना घर-बार छोड़ कर मदीना आये।

मस्जिदे नबवी का निर्माण

मदीना में ठहरने के बाद आपने सबसे ज़रूरी काम मस्जिद बनवाना समझा। यही मस्जिद आजकल मस्जिदे नबवी के नाम से याद की जाती है। यह मस्जिद उस समय कच्ची ईंटों से बनी थी।

फिर मस्जिद के एक सिरे पर एक पटा हुआ चबूतरा बनाया गया जिसे सुफ़्फ़ा कहते थे। यह उन लोगों के ठहरने की जगह थी जो इस्लाम तो लाये थे, पर उनके ठहरने की कोई जगह न थी। ये लोग दिन को जंगल से लकड़ियाँ लाकर बेचते और रात में आपसे शिक्षा प्राप्त करते। जब हुज़ूर स० को इस्लाम के प्रचार के लिए कहीं किसी को भेजने की ज़रूरत होती थी तो इन्हीं सुफ़्फ़ा वालों में से प्रायः भेजे जाते थे।

जब मस्जिद बन चुकी तो उसके क़रीब ही आपने धर्म-पत्नियों के लिये कमरे बनवाये। ७ हाथ चौड़े और १०-१० हाथ लम्बे ये कमरे भी कच्ची ईंटों और खजूर की टट्टियों से बने हुये थे।

आपके पड़ोस में जो खाते-पीते अन्सार रहते थे, वे आपकी सेवा में कुछ दूध भेज दिया करते इसी तरह कभी सालन और कभी कुछ। बस इसी पर आपकी गुज़र थी।

एक दूसरे के भाई बना दिये गये

मक्के से जो मुसलमान हिजरत करके मदीना आये थे, वे घरबार, धन-दौलत छोड़ने के कारण तंगी के दिन गुज़ार रहे थे। आपने यह किया कि एक-एक मुहाजिर को एक-एक अन्सारी का मुँह बोला भाई बना दिया। फिर ये ऐसे भाई बने कि सगे भाई से भी बढ़कर सिद्ध हुये। हरेक ने अपने भाई को अपने घर या अपनी ज़मीन में जगह दी, अपने माल-दौलत में हिस्सा दिया और उन्हें अपने कारोबार और व्यापार में सम्मिलित कर लिया। और ये एक दूसरे के भाई क्यों न बनते; एक ही पथ के पथिक, एक ही मंज़िल के राही, एक उद्देश्य, एक ही आवाज़, एक ही नेता, एक

ही किताब, आख़िर क्या चीज़ थी जो उन्हें दो बनाये रखती – दो होने की भावना तो उसी समय पैदा होती है जब कि हरेक का स्वार्थ भिन्न हो, हरेक की मंज़िल अलग हो, यहाँ तो इसमें से कोई भी चीज़ नहीं है – है यह इस्लाम का कितना बड़ा कारनामा, एकता का अनूठा उदाहरण।

इस्लामी इतिहास का नया मोड़

हिजरत से पहले इस्लाम का सन्देश मक्का वालों के सामने प्रस्तुत किया जा रहा था, जो अनेकेश्वरवादी थे, मूर्ति के पुजारी थे, और जिनके पास न कोई ग्रन्थ ही था कि उससे उनका पथ-प्रदर्शन होता, पर हिज़रत के बाद मदीने की परिस्थितियाँ दूसरी थीं, और वातावरण बदला हुआ था। मक्के में इस्लाम नये सिरे से पेश किया जा रहा था, पर मदीना में यह बात भी नहीं थीं, वहाँ पहुँचने पर इस्लाम के अनुयायियों की अच्छी भली संख्या मौजूद था, जिनको अनुशासित व प्रशिक्षित करना था। मदीना में एक नये इस्लामी राज्य की नींव पड़ रही थी, उसकी सुरक्षा और उसकी दृढ़ता के लिये नये सिरे से सामाजिक व राजनीतिक कार्यक्रम बनाना था। फिर मदीना में यहूदियों का सामना था जो एक अल्लाह को तो मानते थे, रसूलों पर ईमान रखते थे, मरने के बाद के जीवन के भी इन्कारी न थे, और सबसे बड़ी बात यह कि एक पैग़म्बर हज़रत मूसा के अनुयायी होने के नाते से उस ग्रन्थ और उस विधान के अनुसार चलने के दावेदार भी थे जो हज़रत मूसा लाये थे। सच तो यह है कि उनका धर्म भी वही इस्लाम ही था जिसकी ओर हज़रत मुहम्मद स० बुला रहे थे। यह बात दूसरी थी कि वर्षों की बेपरवाही से उनमें असंख्य त्रुटियाँ पैदा हो गई थीं। उनका आचरण ईश-विधान से बहुत दूर जा पड़ा था, ईश-धर्म से उनका सम्बन्ध इतना क्षीण हो गया था और सामूहिक रूप से उनमें कुछ ऐसे दोष जड़ पकड़ गये थे कि वे हर किसी सत्य कहने वाले की बात को सुनी-अनसुनी कर देते थे।

इसी तरह इस्लाम की बढ़ती हुई ताकत और अपने स्वार्थ को सामने रखकर कुछ ऐसे भी मुसलमान हो गये थे जिनके मन कपट से भरे हुये

थे, जिनके आचरण इस्लाम और मुसलमानों के विरुद्ध थे, जो पंचगामी थे। ऐसे लोग जब किसी राज्य में पैदा हो जायें या किसी संस्था से चिपक जायें और उन पर ध्यान न दिया जाये तो ये उसे खोखला कर देते हैं और मौक़ा आने पर उसे डाइनामेट लगाकर भक से उड़ा देते हैं। मदीना में ऐसे लोग पैदा हो गये थे, अब उनको भी समझना था।

ऐसी थी वस्तुस्थिति जिससे आपको निबटना था।

मुसलमानों को आदेश

ऐसे समय में नई परिस्थितियों को सामने रखते हुये मुसलमानों को जो आदेश दिये गये, वे इस प्रकार थे : —

(१) उन्हें चाहिये कि वे इस्लाम के प्रचार में और अधिक मुस्तैदी दिखायें, पूरे उत्साह और पूरी उमंग से काम करें, दलीलों से सिद्ध करें कि इस्लाम ही सत्य है और अधिक से अधिक लोगों को अपना साथी और अपने विचारों का समर्थक बनायें।

(२) विरोधी जिन विश्वासों पर जमे हुये हैं उनको सप्रमाण गलत सिद्ध करें ताकि जो व्यक्ति भी बुद्धि से काम लेकर कुछ समझना चाहे, उसके लिये मूल तथ्य तक पहुँचने में कोई कठिनाई न हो।

(३) जिस उद्देश्य को लेकर मुहाजिरों ने घर-बार छोड़ा है, अन्सार ने उनके बसाने और उनके रहने-सहने की ज़िम्मेदारी ली है, उसी ध्येय को हर समय सामने रखें, और इस नये राज्य की सुरक्षा व दृढ़ता के लिये तन-मन-धन की बाज़ी लगा दें, वे अपने आचार-विचार में इतने दृढ़ हो जायें कि कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उनके क़दम न डिगने पायें।

(४) वे परिस्थितियों को देखते हुये अब इस पर पूरी तरह तैयार हो जायें कि जब भी उनको मिटा डालने के इरादे से विरोधी उन पर धावा बोलें तो वे अपने कमज़ोर और निहत्थे होने के बावजूद उनका डटकर मुक़ाबला करें और उन्हें अपने धर्म के सत्य होने पर ऐसा दृढ़ विश्वास हो और अपने अल्लाह की मदद पर ऐसा भरोसा हो कि वे कभी मैदान

से मुंह न मोड़ें।

(५) अपने ईमान में इतनी शक्ति पैदा करें कि कपट और छल को क़रीब न आने दें।

(६) अपने में इतना साहस पैदा करें कि जो लोग समझाने के बाद भी इस्लामी जीवन-व्यवस्था के स्थापित करने में बाधा बनें, उनको बलात् मैदान से हटा दें।

यहाँ यह बात स्पष्ट रहे तो उचित होगा कि व्यक्ति का प्रशिक्षण, समाज का निर्माण और राज्य की स्थापना — ये तमाम चीज़ें मुसलमानों का न मूल उद्देश्य थीं, न आपका ही यह लक्ष्य था, न इसमें उनका कोई स्वार्थ था और न ही आपका कोई लाभ। ये तमाम चीज़ें केवल इस लिए की जा रही थीं ताकि ईश्वर प्रसन्न हो और ज़ाहिर है ईश्वर की प्रसन्नता इसी में है कि उसकी भक्ति और उसका आज्ञापालन सुचारू रूप और सुन्दर ढंग से होने लगे।

यहूदियों से समझौते

यह बात बताई जा चुकी है कि मदीना के चारों ओर यहूदियों की बस्तियाँ थीं। उन लोगों को इस्लाम के विशुद्ध रूप से अवगत कराने के साथ साथ इस बात की भी ज़रूरत थी कि उनसे राजनीतिक सम्बन्ध स्थापिन किये जायें। ऐसा इसलिये कि : —

(१) यहूदियों की एक शक्ति थी, भले ही वे अल्पसंख्यक रहे हों, और अल्पसंख्यकों से स्पष्ट व्यवहार करने से ही किसी राज्य में शान्ति बनी रह सकती है, मुख्य रूप से उस राज्य को इस पर ध्यान देने की और भी अधिक आवश्यकता रहती है जो नया-नया स्थापित हुआ हो, या जिसने एक व्यवस्था से स्वतन्त्र होकर दूसरी व्यवस्था अपनाई हो।

(२) मक्का के क़ुरैश यह जानकर कि मुसलमान मक्के से चले गये, चुप नहीं बैठ गये थे, बल्कि जब उन्होंने यह देखा कि मुसलमानों की एक सुसंगठित संस्था मदीना में इकट्ठा होकर एक प्रबल शक्ति बन रही है तो

वे इस्लाम के इस केन्द्र को अपनी शक्ति के बल पर मिटा डालने की योजनायें सोचने लगे। इसलिये ज़रूरी था कि मदीना के चारों ओर बसने वाले यहूदियों से मुसलमानों के राजनीतिक सम्बन्ध स्पष्ट रहें ताकि मक्का वालों के आक्रमण के समय यह अन्दाज़ा किया जा सके कि यहूदियों की यह शक्ति किस का साथ दे रही है।

इन्हीं दो मुख्य कारणों से आपने समझौते की बात चलाई। कुछ क़बीलों ने तो निरपेक्षता की घोषणा की और कुछ ने मुसलमानों का साथ देने का वायदा किया।

ये मुनाफ़िक़

मदीने में इस्लामी राज्य को जिन नई परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा था, उनमें मुनाफिकों[1] की समस्या अधिक महत्त्व रखता थी।

मक्के के अन्तिम काल में कुछ ऐसे लोग इस्लामी संस्था में घुस आये थे जो यद्यपि इस्लामी सन्देशमात्र को सत्य समझते, पर ईमान की कमजोरी के कारण वे इस्लाम के लिए अपनी दुनिया – व्यापार, कृषि या नातेदारी के बन्धन – नहीं छोड़ सकते थे लेकिन अब मदीना में कुछ ऐसे मुनाफ़िक़ भी इस्लामी संस्था में घुस आये जो वास्तव में तो इस्लाम के इन्कारी थे, केवल दंगा व उपद्रव करने के लिए वे मुसलमानों के साथ मिल गये थे, या फिर कुछ ऐसे लोग थे जो विवश होकर अपने को मुसलमान कहते थे, उनका मन तो इस्लाम पर ठुका नही था, पर वे करते क्या जबकि उनका परिवार उनका क़बीला या उनके पूरे साथी मुसलमान हो चुके थे। साथ ही कुछ ऐसे अवसरवादी (Opportunist) भी संस्था में घुस आये थे जो एक ओर तो मुसलमानों के साथी बनकर अपना स्वार्थ पूरा करना चाहते थे और दूसरी ओर शत्रुओं से भी साँठ-गाँठ रखते थे ताकि वे भी अपने बने रहें।

उस समय के मुनाफ़िक़ों या पंचगामियों की पोज़ीशन को दृष्टि में

१. इस्लामी परिभाषा में मुनाफ़िक़ उन लोगों को कहते हैं जो प्रत्यक्ष में तो मुसलमान हों पर भीतर ही भीतर वे इस्लाम और मुसलमानों की जड़ काटने पर तुले हुये हों, आज की परिभाषा में 'पंचगामी' (Fifth Columnist) से इसे समझा जा सकता है।

अगर रखा जाये तो अन्दाज़ा होगा कि ये खुले शत्रुओं से कहीं अधिक घातक सिद्ध हो सकते थे। ये तो घर ही के काले नाग थे जो घर ही वालों को डसने पर उतारू थे।

खरे-खोटे की पहचान

इस समय ज़रूरत थी कि इन मुनाफ़िक़ों और सच्चे मुसलमानों को आज़माया जाये ताकि हरेक पहचाना जा सके कि कौन कितने पानी में है।

अतएव इन दोनों को परखने का एक मौक़ा आ ही गया।

अब तक इस्लाम का क़िबला[1] बैतुलमक़्दिस (यरूशलम) था। तमाम लोग उसी ओर मुँह करके नमाज़ें पढ़ा करते थे। शाबान सन् २० हि० में ठीक नमाज़ की हालत में क़िबले को बदलने का हुक्म आया और बैतुलमक़्दिस के बजाय काबा को मुसलमानों का क़िबला बना दिया गया। अतएव आपने ठीक नमाज़ की हालत ही में अपना रुख बैतुलमक़्दिस की ओर से बदल कर काबा की ओर कर लिया। इस घटना का इस्लामी इतिहास में बड़ा महत्त्व है। क़ुरआन ने इसका उल्लेख इन शब्दों में किया है : —

"हमने काबा को जो तुम्हारा क़िबला बना दिया तो इस लिए ताकि यह मालूम हो जाये कि कौन पैग़म्बर का अनुयायी है और कौन है उल्टा पीछे फिर जाने वाला।"

इस परिवर्तन से, वास्तव में मुनाफ़िक़ों की पहचान हो गई, इसलिए कि उन्होंने बिना समझे-बूझे, अपने मन में कपट लिये होने के कारण इस पर कड़ी आलोचना की, जिससे उनकी स्थिति साफ़ हो गई। वे यह न समझ सके कि यह आदेश इस बात का एलान है कि अब तक के जगत के नैतिक व आध्यात्मिक नेतृत्व का जो काम यहूदियों को सौंपा गया था; अब उन्हें इससे हटाया जा रहा है क्योंकि उन्होंने इस नेतृत्व सरीखे कर्त्तव्य को पहचाना ही नहीं और अब यह ज़िम्मेदारी उस मुस्लिम सम्प्रदाय को सौंपी जा रही है जो सही अर्थों में इसका हक़दार है।

१. जिस दिशा की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ी जाती है उसको क़िबला कहते हैं। आजकल मुसलमान काबा की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ते हैं, इसलिए उनका क़िबला काबा है।

सत्य-असत्य का संघर्ष

मुसलमानों के मदीना पहुँचने और एक शक्ति बन जाने से क़ुरैश यों भी भयभीत थे और समझते थे कि जिन लोगों के साथ उन्होंने इतना अन्याय व अत्याचार किया है वे मौक़ा पा जाने पर उनसे बदला लेने से क्यों चूकेंगे। फिर मुसलमानों के यहूदियों से समझौते, इस्लामी संस्था के व्यक्तियों का शुद्धिकरण और मुसलमानों का अनुशासन (Discipline) आदि को देखकर तो उनको मौत साफ़ दिखाई देने लगी। इन्होंने पूरा बल देकर इस्लाम और मुसलमानों को कुचलने की फिर कोशिश की। उन्होंने फ़ौजी भर्ती शुरू कर दी, विभिन्न क़बीलों को तोड़-तोड़ कर अपने में मिलाना शुरू कर दिया, लड़ाई का ख़र्च निकालने के लिए उन्होंने कुछ लोगों को संयुक्त व्यापार के लिए तैयार किया ताकि इससे जो लाभ हो उसे लड़ाई जीतने के लिए ख़र्च किया जा सके।

मुसलमानों की नीति

इस्लाम की लड़ाई लड़ने की कभी भी नीति नहीं रही है। मानव सम्मान का तकाज़ा भी यही है कि वे ख़ून-ख़राबे से दूर रहें, इसीलिए मुसलमानों के उस समय की परिस्थितियों को सामने रखकर मुख्य रूप से क़ुरैश की शत्रुता को देखकर, यह नीति बनाई थी कि विरोधियों का ख़ून बहाने के बजाय उसे निःशक्ति कर दिया जाये, यहाँ तक कि या तो वे साथ देने लगें या सत्य मार्ग में बाधा डालना छोड़ दें।

अपनी इस नीति को लागू करने के लिए जहाँ मुसलमानों के नेता हज़रत मुहम्मद स० ने और काम किये, वहीं इस पर भी ज़ोर दिया कि मक्का वालों के व्यापारिक मार्ग की नाकाबन्दी (Blockade) करके

उनका बल तोड़ दिया जाये। यही एक ऐसा दबाव था जिससे मक्का के लोग मजबूर हो सकते थे। मक्का वालों का बड़ा व्यापार यमन और शाम (सीरिया) से था। शाम के व्यापार का जो मार्ग लाल सागर के किनारे-किनारे जाता था, मदीना ठीक उसी रास्ते पर था। मदीना की यह स्थिति क़ुरैश की नाकाबन्दी के लिये उचित भी थी। इसीलिए आपने कभी-कभी मुसलमानों की छोटी-छोटी टुकड़ियाँ भेजनी शुरू कर दीं। इन टुकड़ियों द्वारा यद्यपि कभी रक्तपात नहीं हुआ और न ही कभी विरोधियों का कोई कारवाँ लूटा गया, पर उन्हें भेज-भेजकर क़ुरैश को साफ़-साफ़ बता दिया गया कि वे अब जो भी क़दम उठायें यह सोचकर उठायें कि हवा का रुख़ किधर है। अगर वे मुसलमानों को तंग करेंगे तो उन्हें भी अपने व्यापार से हाथ धोना पड़ेगा।

ख़तरा बढ़ता ही जा रहा था

स्थिति ऐसी नहीं थी कि मुसलमान शान्ति का जीवन बितायें। उनको हर क्षण यह भय रहता था कि शत्रु कब क्या कर बैठें, इसी लिए मानवता के सबसे बड़े उपकारी ने अपनी सीमाओं की सुरक्षा पर भी अधिक ध्यान दिया और आप भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न-भिन्न टुकड़ियाँ सीमाओं की सुरक्षा और देख-रेख के लिये भेजते रहे कि कहीं कोई आशंका तो नहीं, या कहीं से कोई भय तो नहीं।

इन टुकड़ियों में से १२ सैनिकों पर सम्मिलित एक टुकड़ी अब्दुल्लाह इब्ने जहश के नेतृत्व में नख़ला की ओर भेजी गई। यह जगह मक्का और तायफ़ के बीच में है। संयोग कि क़ुरैश के कुछ लोग शाम के व्यापार का माल वापस लिये आ रहे थे। हज़रत अब्दुल्लाह ने उन पर आक्रमण किया और उनमें एक व्यक्ति उमर इब्ने हज़रमी मारा गया, दो गिरफ़्तार हुए और लूट का माल भी कुछ हाथ आया।

यह पहली घटना थी जिसमें बिना किसी आर्डर और बिना किसी आदेश के लड़ाई छेड़ दी गई थी, इसलिए आप बहुत रुष्ट हुए और इसे

इस्लामी सिद्धान्तों के विरुद्ध बताया। पर चूँकि इसमें क़त्ल होने वाला और दोनों गिरफ़्तार होने वाले बड़े ऊँचे घराने के लोग थे, इसलिए क़ुरैश ने इसे बहुत उछाला और उन्हें ख़ून का बदला लेने का एक बहाना मिल गया।

बहाना और तैयारी

क़ुरैश को बहाना ही चाहिए था और वह मिल गया। उन्होंने बड़ी धूम से तैयारी शुरू कर दी। जैसाकि हम बता चुके हैं कि लड़ाई के ख़र्च की स्कीम पहले ही बन चुकी थी, इसलिए उस ओर भी जल्द ही कदम उठाया गया और अबूसुफ़ियान के नेतृत्व में यह कारवाँ व्यापार के ध्येय से शाम की ओर चल पड़ा। जब ३०-४० व्यक्तियों पर सम्मिलित यह कारवाँ ५०,००० अशर्फ़ी का माल अपने साथ लेकर उस जगह के पास पहुँचा जो मुसलमानों के हाथ में थी, तो उन्हें यह भय हुआ कि मुसलमान इस कारवाँ पर धावा बोलकर इस माल को लूट न लें जो मुसलमानों ही की गर्दन पर तलवार चलाने के लिए हासिल किया गया था।

अबूसुफ़ियान ने ऐसा अनुभव करते ही एक व्यक्ति को मक्का दौड़ा दिया, कि वह वहाँ से कुमुक लेकर आए। इस पुकार पर क़ुरैश के तमाम बड़े-बड़े सरदार १००० सैनिकों को लेकर लड़ाई के लिए निकल पड़े। चली तो यह सेना कारवाँ बचाने के लिए, पर इसका मूल उद्देश्य यह था कि इस बार मुसलमानों का सफ़ाया ही कर दिया जाए, ताकि यह रोज़-रोज़ की झंझट से छुट्टी मिले।

मुसलमान भी मैदान में

हज़रत मुहम्मद स० ने अपने सुरक्षा विभाग के साथ-साथ गुप्तचर विभाग को भी इतना प्रबल बना रखा था कि आपको इन तमाम बातों की सूचनाएँ बराबर मिलती रहीं। क़ुरैश के इस धावे ने आपके लिए विकट समस्या उत्पन्न कर दी थी। आप अनुभव कर रहे थे कि अगर क़ुरैश को अपने दुष्ट इरादों में सफलता मिल गई और उन्होंने मुसलमानों की इस

नई उठती शक्ति को कुचलकर रख दिया तो फिर इस्लाम की आवाज़ सदा के लिए दबकर रह जायेगी। यही सब सोचकर आपने यह निर्णय किया कि इस समय जो शक्ति भी हमें प्राप्त है, उसे लेकर मैदान में निकलें, और अपनी पूरी ताकत लगाकर यह सिद्ध कर दें कि जीने का हक किसे है और किसे नहीं। इधर अल्लाह का भी यही फ़ैसला था, इसलिए मुसलमान भी अपने अल्लाह पर भरोसा करके मैदान में कूद पड़े।

मुसलमानों की सेना, जिसमें कुल ३१३ सैनिक थे, अबूसुफ़ियान के कारवाँ को लूटने के बजाय १६ रमज़ान सन् ०२ हि० को सीधे बदर के मैदान में पहुँची ताकि क़ुरैश की सेना का मुक़ाबला किया जा सके।

अब यहीं पर दोनों सेनाओं ने पड़ाव डाल दिया। यहाँ यह स्पष्ट रहे कि अबूसुफ़ियान के जिस कारवाँ को बचाने के लिए मक्का की यह सेना आई थी, वह कारवाँ दूसरे रास्ते से मक्का पहुँच गया था।

एक ओर शत्रुओं के १,००० सिपाही थे जिसमें ६०० कवचधारी थे, और १०० सवार थे, ऊँटों की भीड़ थी, अस्त्रों का बाहुल्य था, खाने-पीने का सामान अधिक था, मन विहार के लिए शराब के घड़े थे, गाने वाली लौंडियाँ थीं, नाच गाने का सुन्दर प्रबन्ध था – और दूसरी ओर ३०० से कुछ ज़्यादा निहत्थे सैनिक थे और बस, मानो असत्य पूरी साज-सज्जा से मैदान में उतरा था, पर सत्य निहत्था था – फिर भी सत्य ही की विजय होती है – क्यों, इसलिए कि उसका एक उद्देश्य है, एक लक्ष्य है और वह विजयी होने के लिए ही आया है, उसे निठल्ला बैठना पसन्द नहीं।

निस्सन्देह ये ३०० सिपाही १ और ३ के अनुपात में थे, पर वे विजय के दृढ़ विश्वास के साथ मैदान में उतरे थे, इसलिए कि उनके साथ अल्लाह था, उनमें अपने सिद्धान्त व उद्देश्य पर जमे रहने का अपार साहस था, वे अनुशासित (Disciplined) थे, उनका चरित्र उत्तम और उनका आचरण दृढ़ था।

लड़ाई छिड़ गई

बदर के मैदान में दो शक्तियों की – हथियार वालों की और निहत्थों की, १००० की और ३०० की – लड़ाई छिड़ ही गई, पर नतीजा-नतीजा वही निकला, जो निकलना चाहिए, 'सत्य की विजय असत्य की हार'। इस लड़ाई से कुरैश की मानो कमर ही टूट गई। उनके लगभग ७० व्यक्ति मारे गये और लगभग उतने ही पकड़े गये। इन मारे जाने वालों में उनके बड़े-बड़े सरदार लगभग सभी भेंट चढ़ गये और मुसलमानों में से छः मुहाजिर और आठ अन्सार शहीद हुए।

यह सदा ही होता रहा है और आज भी होता है कि लड़ाइयों में जो क़ैदी पकड़कर आते हैं, उनकी या तो जान ले ली जाती है या अगर उन्हें ज़िन्दा रखा जाता है तो पीड़ा और कष्ट के साथ, लेकिन इस्लाम का यह मानवता पर बड़ा उपकार है कि उसने इस मामले में भी एक उच्च आदर्श पेश किया।

बदर में पकड़े गये तमाम क़ैदी दो-दो चार करके सहाबियों में बाँट दिये गये और उन्हें यह आदेश दे दिया गया कि उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाये, अतएव ऐसा ही किया गया। कुछ मुसलमानों ने तो उन्हें इतने आराम से रखा कि अनेकों बार तो ख़ुद को कष्ट पहुँच गया, पर उनको कोई कष्ट न पहुँचने दिया। बाद में ये क़ैदी कुछ दे-दिलाकर छोड़ दिये गये।

बदर की लड़ाई का प्रभाव

बदर की यह लड़ाई अपने प्रभावों के अनुसार बड़े महत्त्व की रही, जैसे –

(१) यह बात स्पष्ट हो गई कि इस्लाम और कुफ़्र में जीने का हक किसे है और भावी इतिहास कौन-सा मोड़ लेने जा रहा है।

(२) मुसलमान की इस जीत पर अरब के दूसरे क़बीलों की नज़रें

भी इधर उठीं और उन्होंने मुसलमानों से समझौता कर लेने म ही अपना औचित्य देखा।

(३) यहूदी भी इस नई शक्ति से सावधान हो गये, और यह सोचने लगे कि अगर यह शक्ति ऐसे ही फलती-फूलती रही तो एक दिन उनकी भी बारी आ सकती है।

(४) मुनाफ़िक़ों को भी इस विजय ने भयभीत कर दिया और उनको पता चल गया कि अब तराज़ू का कौन-सा पलड़ा भारी हो रहा है।

अन्तर और महान अन्तर

बदर के मैदान में जिस प्रकार दो सिद्धान्तों वाली सेनायें जमा हुईं और उनमें जो अन्तर था, उसकी एक झलक ऊपर दी जा चुकी है कि किस प्रकार एक सेना भौतिक स्वार्थ व लाभ और नस्ल व क़बीले की संकीर्णताओं से दूर भागते हुए केवल अल्लाह को प्रसन्न करने के लिए और उसी के आदेशों को संसार में चालू व लागू करने के लिए, मानव-जाति के कल्याण के लिये उठती है और दूसरी सेना अपनी चौधराहट, नस्ल क़बीला की कथित श्रेष्ठता, अपने स्वार्थ और अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए आगे बढ़ती है, एक सेना ईश्वर के सामने नत-मस्तक होती हुई, नमाज़ों में मग्न और ईश-प्रसन्नता पर निगाहें जमाये मैदान में उतरती है और दूसरी सेना मौज करती हुई खाती-पीती, शराबों के दौर चलाती, संगीत की लहरों पर नाचती कूदती, और नर्तकियों की आँखों में आंखें डालती सामने आती है; वह सेना संख्या में कम और निहत्थी, पर ईमान, विश्वास, एकता, अनुशासन के अनुसार अधिक शक्ति वाली है, और यह सेना संख्या में अधिक अस्त्रों से लैस है, पर चरित्र-बल में फुसफुसी और बोदी-फिर प्रकृति दोनों में विजय व पराजय का इतना स्पष्ट निर्णय करती है कि अन्धों को भी दिखाई देने लगे कि मिटने वाली शक्ति कौन-सी है और फलने-फूलने वाली कौन-सी?

कैसा है यह अन्तर, महान अन्तर। कुछ उदाहरण और सामने रखिये

तो इस्लामी चरित्र और गैर-इस्लामी चरित्र का अन्तर और अधिक स्पष्ट हो जायेगा।

(१) ऐसे ही विकट अवसर पर दो मुस्लिम नवजवान अबूहुज़ैफ़ा और अबूहियल मक्का से, बड़ी ही कठिनाई के बाद इस शर्त पर आप से आ मिले कि मुहम्मद स० की मदद कदापि न करेंगे, पर संख्या कम होने के बावजूद आपने उन दोनों को अपनी सेना में इस लिये जगह न दी कि वे वायदा कर चुके थे और उसे पूरा करना ज़रूरी था। क्या इस उच्च चरित्र का है कोई उदाहरण?

(२) लड़ाई में मारे गये शत्रुओं के शवों को आपने गढ़ा खुदवा कर दफ़न कराया। किसी शव का अनादर नहीं होने दिया गया।

(३) लड़ाई में प्राप्त माल के बारे में आम चलन यह था कि जो कुछ जिस के हाथ लगता वह उसका होता और इससे एक हड़बोंग मच जाती, पर क़ुरआन ने इस माल का नया नियम बनाया और बताया यह तो अल्लाह और उसके रसूल का हक़ है, इसमें हाथ डालना और इसे बांटना तो इस्लामी राज्य का काम है। इस नये नियम के अनुसार यह माल पाई-पाई और रत्ती-रत्ती करके सेनापति के क़दमों में डाल दिया जाने लगा और फिर उसमें से पांचवा हिस्सा राज्य की सामूहिक आवश्यकताओं के लिए रोक कर बाक़ी को सिपाहियों में बांट दिया जाता।

(४) ग़ैर-इस्लामी व्यवस्था में लड़ाई में पकड़े गये क़ैदी विजेताओं की दया पर ही होते, उन पर घोर अत्याचार किया जाता, पर आपने लड़ाई के क़ैदियों का आदर करना सिखाया और उनसे सदव्यवहार का एक आदर्श क़ायम कर दिया।

(५) विजेता विजय के नशे में मस्त होकर ओछे मानवता से गिरे हुए काम करने लगते है, पर हुज़ूर और आपके साथियों में ओछे पन की कोई झलक तक दीख नहीं पड़ती, न गन्दे नारे हैं, न किसी का अपमान है, न गाना बाजा है, न कोई जलसा-जलूस है, बल्कि विजय पाने के बाद हरेक अल्लाह के प्रति कृतज्ञता-प्रदर्शन में ही संलग्न है।

(६) बजाय इसके कि मुस्लिम सिपाही अपनी शक्ति के नशे में चूर हों, उनका कमाण्डर क़ुरआन की आयतों द्वारा उनके ध्यान को उनकी नैतिक व मानसिक त्रुटियों की ओर आकृष्ट करता है, उन पर आलोचना करके उनको बनाव व सुधार की ओर प्रोत्साहन देता है।

यह है इस्लामी व ग़ैर-इस्लामी चरित्र का वह अन्तर जो खुली आँखों देखा जा सकता है, और दृष्टिकोणों व सिद्धान्तों का चरित्र पर कितना प्रभाव पड़ता है इसका अन्दाज़ा इन घटनाओं को देख आसानी से किया जा सकता है।

उहद की लड़ाई

बदर की लड़ाई में क़ुरैश हारे तो लेकिन इसने मानों भिड़ के छत्ते में पत्थर मारने का काम किया, उनका ग़ुस्सा भड़क उठा, उन्होंने कस्में खाईं कि अपने इन मारे गये सरदारों का बदला ले के रहेंगे; उनकी औरतों ने मुसलमानों का कच्चा कलेजा चबाने और उनके अंगों का हार पहनने तक की शपथ खाई।

स्पष्ट है जब रोष यहाँ तक हो तो शत्रु पर विजय पाने की वह कोशिश की जाएगी जिससे विजय की आशा बंधे। फिर यह कि जब चरित्र व आचरण का कोई आदर्श न हो तब तो हर अच्छा बुरा साधन भी अपनाकर बाज़ी जीतने की कोशिश की जाएगी। अतएव यही हुआ, मुसलमानों के ख़िलाफ़ प्रोपेगन्डा करके, उनके बारे में भ्रांत धारणायें फैलाकर, अरब के दूसरे क़बीलों को मुसलमानों के विरोध में एक कर दिया गया· इसमें वे क़बीले भी क़ुरैश के साथ हो गए जिनके मुसलमानों के साथ समझौते थे, वे भी साथ हो गये जिन्होंने निरपेक्षता का एलान किया था। और वे तो साथ थे ही जो क़ुरैश के समर्थक थे – और चढ़ दौड़े मदीना की ओर एक और लड़ाई के लिये।

मुसलमान भी बढ़े

जब हुज़ूर स० को यह मालूम हुआ कि क़ुरैश मदीना पर चढ़ाई के लिए आ रहे हैं। और मदीना की एक चरागाह को उनके घोड़ों ने साफ़ भी कर डाला है तो आपने भी मुसलमानों को लड़ाई के लिए चलने का हुक्म दे दिया। जुमा की नमाज़ पढ़कर १,००० सैनिकों के साथ आप नगर से चले। क़ुरैश की सेना ने उहद की पहाड़ी पर अपना पड़ाव डाला था।

अभी आप वहाँ तक पहुँच भी न पाये थे कि मदीना के पंचगामियों (मुनाफ़िक़ों) ने, अपने स्वार्थ को सामने रखकर, मुसलमानों को हारने पर विवश होने के लिए, इस्लाम की जड़ काट देने के लिए, सिर उठा ही लिया और उन्होंने ऐसे ही विकट अवसर पर ३०० की संख्या में निकल कर मुसलमानों को ऐसी करारी चोट पहुंचाई कि लोग तिलमिला उठे – पर सत्य की विजय संख्या के बल-बूते पर नहीं होती, उसके लिए दृढ़ विश्वास, अडिग कदम, अथक परिश्रम और अल्लाह की मेहरबानी काफ़ी है और बस।

लड़ाई के मैदान में

क़ुरैश इस बार भी बड़ी साज-सज्जा से आए थे, लगभग ३,००० सैनिक थे और लड़ाई का सामान बड़ी मात्रा में साथ था। औरतें भी आई थीं ताकि सैनिकों को लड़ने-मरने पर उभार सकें।

दोनों ओर के सेनापतियों ने सेनाओं को ढंग से सजाया था। हुज़ूर स० ने अपनी सेना को इस तरह लगाया कि पीछे पहाड़ था और सामने शत्रु-सेना। हाँ पीछे की ओर एक दर्रा ऐसा था कि जिस से आक्रमण का भय था। वहाँ आपने अब्दुल्लाह इब्ने ज़ुबैर को ५० धनुर्धारियों के साथ नियुक्त किया और आदेश दिया कि, "किसी को इस दर्रे से आने न देना और तुम यहाँ से किसी हाल में न हटना। अगर तुम देखो कि चिड़ियां हमारी बोटियाँ नोचे लिये जा रही हैं, तब भी तुम अपनी जगह न छोड़ना।"

लड़ाई शुरू हुई और मुसलमानों का पल्ला भारी रहा, क़ुरैश के बहुत से सेनानी मारे भी गये। यहाँ तक कि उनकी सेना में भगदड़ मच गई। मुसलमान यह समझे कि उन्होंने मैदान मार लिया। इसलिए शत्रुओं के माल-असबाब को लूटना शुरू कर दिया। इधर जो लोग दर्रे की सुरक्षा में लगे हुए थे, उन्होंने जब देखा कि मुसलमान लूटने में लगे हुए हैं और शत्रु के पाँव उखड़ गए हैं तो वे समझे कि लड़ाई ख़त्म हो गई और वे

भी माल लूटने के लिए लपके। उनके सरदार हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने ज़ुबैर ने उन्हें रोका और हुज़ूर स० का हुक्म याद दिलाया, पर कुछ व्यक्तियों के अलावा और कोई न रुका।

क़ुरैश का पीछे से आक्रमण

ख़ालिद इब्ने वलीद ने, जो उस समय क़ुरैश की एक टुकड़ी को कमाण्ड कर रहे थे, इस मौक़े से फ़ायदा उठाया और पहाड़ी का चक्कर काट कर पीछे से मुसलमानों पर आक्रमण कर दिया। हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने ज़ुबैर और उनके बचे साथियों ने, जो दर्रे की देख-भाल कर रहे थे, निर्भीकता से उनका मुक़ाबला किया, पर वे शत्रुओं के इस हल्ले को रोक न सके और शहीद हो गये।

शत्रुओं के इस यकायकी आक्रमण को मुसलमान सहार न सके, वे बौखला गये और देखते ही देखते जीत हार में बदल गई। बड़े-बड़े नेता और महान सेनानी मारे गये, यहाँ तक कि हुज़ूर स० भी घायल हुए। पर इस अवसर पर मालूम नहीं स्थिति क्या बनी, कि शत्रु अपनी विजय को पूर्ण किये बिना मैदान छोड़ कर वापस चले गये, जब वे बहुत दूर चले गये तब होश आया यह तो बड़ी ग़लती हुई, पर दुबारा मदीने पर आक्रमण करने का साहस न जुटा, इसलिए विचार आने के बाद भी वे वापस मक्का चले गये।

लड़ाई के बाद

उहद की लड़ाई में यद्यपि शत्रुओं को पूर्ण विजय प्राप्त नहीं हुई थी, फिर भी इसे मुसलमानों की पराजय ही कहा जायेगा। इस पराजय में जहाँ शत्रुओं की चालों और षड्यन्त्रों का प्रबल हाथ था वहाँ मुसलमानों की अपनी कोताहियाँ और ग़लतियाँ भी कुछ कम न थीं। इससे यह आभास होता था कि अभी मुसलमानों और मुस्लिम समाज में सुधार की बड़ी ज़रूरत है। चूँकि इस्लाम का मूल उद्देश्य लड़ाई तो है नहीं, मूल उद्देश्य

तो व्यक्ति व समाज का निर्माण है, इसलिए उहद की लड़ाई में ज़ाहिर हुई इन कोताहियों का बहाना बनाकर व्यक्तियों के सुधार और समाज के निर्माण के लिए जो क़दम उठाये गये और मुसलमानों को जो आदेश दिये, वे इस प्रकार थे :—

(१) मुसलमानों को हर हाल में अल्लाह पर भरोसा करना चाहिये। अल्लाह की राह में भले ही कोई साथ दे या न दे, भले ही वे कम संख्या में हों या अधिक, उन्हें हर दशा में अपना उद्देश्य अपना लक्ष्य ही सामने रखना चाहिये। साधनों की कमी, व्यक्तियों की कमी और दूसरी कमियों को सत्य-मार्ग पर चलने में बाधक न बनने देना चाहिए, भौतिक शक्तियों पर भरोसा करना मुसलमान का काम नहीं, उसका भरोसा तो उस सत्ता पर होना चाहिए, जो तमाम शक्तियों का स्वामी है।

(२) समाज में बिगाड़ का प्रमुख प्रेरक धन का लोभ है। इस अवसर पर बिगाड़ की इस जड़ को उखाड़ फेंकने की ओर पूरा ध्यान दिया गया और कहा गया कि मुसलमानों को संसार के लोभ में पड़कर अपना परलोक नहीं बिगाड़ना चाहिए। फिर इसी अवसर पर इस बिगाड़ के सबसे बड़े साधन ब्याज को हराम कर दिया गया। इसलिए कि ब्याज का कारोबार करने वालों में धन का लोभ ऐसा रच-बस जाता है कि वह उनको किसी उच्च उद्देश्य के लिए काम करने योग्य नहीं छोड़ता। इसी से एक वर्ग लोभ, कंजूसी, स्वार्थ और धन के प्रेम-पाश में जकड़ उठता है तो दूसरा वर्ग घृणा, द्वेष और रोष का शिकार हो जाता है।

(३) उहद की लड़ाई के बाद मुसलमानों में कुछ निराशा की-सी स्थिति पैदा हो गई थी, इसलिए उनसे कहा गया कि तुम्हें निराश नहीं होना चाहिए और न ही तुम्हें किसी बात की चिन्ता करनी चाहिए। जीत तुम्हारी ही होगी, पर शर्त यह है कि तुम में पूर्ण ईमान पाया जाता हो। तुम ईमान पर जमे रहो और उसके तक़ाज़े पूरे करते रहो, तुम्हारा इतना ही काम है, इसके बाद तुम्हें सफल बनाना और दुखों व कष्टों से मुक्त करना तो अल्लाह का काम है।

(४) इसी अवसर पर मुसलमानों के मस्तिष्क में यह बात भी बिठा दी गई कि इस्लाम एक सैद्धान्तिक संस्था है, इसके संचालकों के जीने और मरने से इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। वास्तव में मुसलमानों को यह बताकर उनके उस विचार का खण्डन किया गया जिसका प्रदर्शन उन्होंने उस समय किया जब कि उहद के मैदान में यह अफ़वाह उड़ी कि हज़रत मुहम्मद स० शहीद कर दिये गये और यह सुनते ही मुसलमानों ने लड़ाई से ऐसा मुँह मोड़ लिया मानों अब कोई भी कोशिश की जाये, वह बेकार है।

(५) फिर यह कि मनुष्य की तमाम कमज़ोरियों की जड़ मौत का डर है। इस अवसर पर उन्हें याद दिलाया गया कि मौत के डर से भागना व्यर्थ है। कोई प्राणी उस समय तक मर ही नहीं सकता जब तक कि उसकी मौत का समय न आ जाये। इसलिए मुसलमानों से कहा गया कि उन्हें मौत की चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं, चिन्ता इसकी होनी चाहिए कि जीवन में जो भी समय मिल रहा है, उसे कैसे उचित रूप में व्यय किया जाये।

यहूदियों का विरोध

यद्यपि मदीना पहुँचते ही हुजूर स० ने यहूदियों के विभिन्न क़बीलों से समझौता कर लिया था और उनको इत्मीनान दिला दिया था कि उनके जान व माल से कोई छेड़-छाड़ न होगी और न ही उनकी धार्मिक स्वतन्त्रता में कोई बाधा डाली जायेगी, फिर भी यहूदी विद्वान और नेता इस्लामी शक्ति को बढ़ते देखकर असन्तुष्ट ही रहते थे इसलिए कि: —

(क) अब तक यहूदियों को लगभग पूरे अरब पर धार्मिक व आध्यात्मिक गुरुता प्राप्त थी, पर अब जबकि इस्लाम ने उनकी धार्मिकता और आध्यात्मिकता का पोल खोल दिया, और विशुद्ध धार्मिकता व आध्यात्मिकता प्रस्तुत की तो उनका रहा-सहा सम्मान लोगों के दिलों से निकल गया।

(ख) क़ुरआन ने उनके वर्तमान चरित्र व आचरण पर आलोचना करके यह बात स्पष्ट कर दी कि वे विचार के बोदे और व्यवहार के कच्चे हैं। इससे इनके 'बड़ों' का कारोबार मन्दा पड़ने लगा, उनके स्वार्थ को आघात पहुँचने लगा, जिससे उन्होंने अपना सुधार करने के बजाय सत्य का विरोध करना अपना कर्तव्य बना लिया।

(ग) इस्लाम की बढ़ती हुई शक्ति और शत्रुओं की पराजय से वे और भी चिन्तित हो उठे। उनकी यह विरोध-भावना इतनी बढ़ी कि उन्होंने तमाम समझौतों को भी ध्यान में न रखा, जो उन्होंने मुसलमानों से किये थे।

बनीक़ीनक़ाअ की उद्दण्डता

यहूदियों का सबसे वीर और पराक्रमी क़बीला बनीक़ानक़ाअ था जिसने बदर की लड़ाई के तुरन्त बाद ही अपनी उद्दण्डता का प्रदर्शन किया।

उसने एक मुस्लिम स्त्री का अनादर करके मुसलमानों के विरुद्ध लड़ाई का एलान कर ही दिया। मुसलमानों ने इसके उत्तर में उनके क़िले को घेर लिया और १५ दिन तक घेरे रहे। अन्त में यह तै पाया कि इन्हें देश-निकाला दिया जाये और ७०० यहूदी देश से निकाल दिये गये।

बनू नज़ीर का बहिष्कार

इसी तरह बनू नज़ीर क़बीले के बहुत-से यहूदियों ने भी उद्दण्डता दिखाई और अपने दिये गये वचन को भंग करने में तनिक भी झिझक का अनुभव न किया। उन्होंने हुज़ूर स० को क़त्ल करने के निर्लज्ज षड्यन्त्र भी रचे। जब उनकी ये हरकतें सीमा पार कर गईं तो आपने उनके क़िले पर भी १५ दिन का घेरा डाल दिया। विवश होकर वे इस पर तैयार हो गये कि अपने घरों को छोड़कर निकल जायें। इस समझौते के अनुसार उनके कितने ही नेता ख़ैबर चले गये। ये लोग अपने साथ बहुत-सा सामान ले गये, केवल उतना ही पीछे छोड़ा जिसे ये ले जा नहीं सकते थे।

षड्यन्त्रों का सिलसिला

बनूनज़ीर मदीना से निकलकर ख़ैबर पहुंचे। यहाँ उन्होंने इस्लाम के विरुद्ध एक भयानक षड्यन्त्र रचा और आस-पास के क़बीलों को मुसलमानों के ख़िलाफ़ भड़काना शुरू किया। मक्के में जाकर क़ुरैश को लड़ाई के लिए तैयार किया और कहा कि अगर सब मिलकर आक्रमण कर दें तो इस्लाम का नाम-निशान मिटाया जा सकता है। क़ुरैश तो इस बात के लिए तैयार बैठे ही थे। अतएव यहूदियों के बहुत-से क़बीलों ने और मक्के के क़ुरैश ने मिलकर एक बहुत बड़ी सेना तैयार की, जिसकी संख्या का अन्दाज़ा लगभग १०,००० किया जाता है।

जब आपको यह मालूम हुआ तो मुसलमानों से सलाह ली कि क्या किया जाये। हज़रत सलमान फ़ारसी चूँकि युद्ध-कला को भली-भाँति जानते थे, उन्होंने राय दी कि नगर की तीन दिशायें तो मकानों और नख़लिस्तानों

से घिरी हुई हैं, केवल एक दिशा ऐसी है कि जिससे शत्रु नगर में प्रवेश कर सकते हैं, ऐसा भय है, इसलिए इस खुली दिशा की ओर खाई खोदी जाये जिससे शत्रुओं का नगर में प्रवेश सम्भव न हो सके। इससे सभी सहमत हो गये।

अब खाई खोदी जाने लगी। ३,००० मुसलमानों ने दिन व रात एक करके २० दिन में इस काम को पूरा किया और इस तरह पूरा किया कि स्वयं हुज़ूर स० भी इनमें एक साधारण मज़दूर की भाँति काम कर रहे थे। इन मुसलमानों ने इसे इतनी तन्मयता से पूरा किया कि उनका तीन-तीन दिन का उपवास भी बाधा न डाल सका।

शत्रु निकट आ रहे थे

शत्रुओं की सेना मदीना की ओर बढ़ती चली आ रही थी और इधर मुसलमान वीरता के साथ उनका डटकर मुक़ाबला करने की तैयारी कर रहे थे। हाँ, ऐसी स्थिति मालूम करके कायर मुनाफ़िक़ों के होश उड़े जा रहे थे। और मदीने में बसने वाले यहूदियों का तीसरा क़बीला बनूक़ुरैज़ा भी सोच-सोचकर पैंतरे बदलने लगा था। उनका ठीक पता ही नहीं चल रहा था कि वे किस ओर रहेंगे। भीतर के इन शत्रुओं से सुरक्षित रहने के लिए भी आपको प्रबन्ध करना था, इसलिए आपने २०० आदमियों की एक टुकड़ी उनकी देख-भाल के लिए नियुक्त कर दी ताकि भीतर किसी प्रकार का विद्रोह न पैदा हो सके।

आज़माइश ही आज़माइश

एक ओर राज्य के ये पंचगामी और बनूक़ुरैज़ा के यहूदियों का रचा गया षड्यन्त्र, दूसरी ओर अरब के तमाम क़बीलों का सैनिक मोर्चा, और उनका संयुक्त आक्रमण, तीसरी ओर सर्दी का कठिन समय, मुसलमानों के पास खाने-पीने के सामान की कमी, लगातार कई-कई दिन का उपवास, न रातों की नींद, न दिन का आराम, हर समय जान का ख़तरा, ये तमाम

चीज़ें ऐसी थीं जो मुसलमानों के लिये आज़माइश पर आज़माइश सिद्ध हो रही थीं। ऐसे समय में उनके चरित्र का महत्व कितना बढ़ जाता है जिन्होंने पूरे साहस और वीरता से काम लिया, सत्य पर जमे रहे और ऐसे अनुशासन का प्रदर्शन किया कि आज तक का इतिहास जिसका उदाहरण नहीं प्रस्तुत कर सका। कैसा है वह सत्य सन्देश और कैसा धर्म है यह इस्लाम कि अपने अनुयायियों में सजीवता भर देता है, उनके जीवन को सभ्य व अनुशासित बना देता है, उन्हें आत्म-विश्वास, दृढ़ता, और श्रेष्ठ चरित्र का स्वामी बना देता है।

शत्रु लगभग एक महीने तक घेरा डाले पड़े रहे, पर विजय के चिन्ह कहीं दूर-दूर तक भी न दिखाई दिये। फिर असत्य के पुजारियों में कभी जमाव भी होता है कि वे विकट परिस्थितियों का मुक़ाबला कर पाते, कड़ाके की सर्दी थी, खाद्य-सामग्री में कमी हो गई थी, तूफ़ान ने उनके डेरों को उखाड़ फेंका था – भला ऐसी स्थिति में वे ठहर पाते, जम पाते और विजयी हो पाते। घबरा गये, परेशान हो गये और अंत में घेरा उठा लिया और निराश व टूटे मन से वापस चले गये।

घेरे के उठा लेने का दूसरा नाम था शत्रुओं की पराजय – ऐसी पराजय कि फिर कभी मुँह दिखाने योग्य न रहें।

बनूक़ुरैज़ा का अन्त

तनिक विचार तो कीजिये एक ओर शत्रुओं का टिड्डी दल घेरा डाले हो और दूसरी ओर यहूदी कबीले बनीक़ुरैज़ा की शत्रुओं से साँठ-गाँठ चल रही हो, क्या यह षड्यन्त्र क्षम्य हो सकता है? क्या यह किसी राज्य और वह भी नये उभरते राज्य के प्रति कठोराघात नहीं? इतना घातक षड्यन्त्र था यह कि इसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

शत्रुओं की काली घटा के छटते ही बनीक़ुरैज़ा के क़िलों को घेरे में ले लिया गया ताकि लगे हाथों इनके करतूतों का मज़ा इन्हें चखा दिया जाये। यह घेरा कोई एक महीने तक चलता रहा, अन्ततः बनीक़ुरैज़ा ने

हथियार डाल दिये और उन्होंने स्वयं तौरेत के इस निर्णय को अपने लिये स्वीकार कर लिया कि उनके सैनिकों का वध कर दिया जाये, शेष गिरफ़्तार कर लिये जायें और उनका माल असबाब ज़ब्त कर लिया जाये।

इस तरह उनके कुल ४०० व्यक्तियों को फांसी के तख़्ते पर लटका दिया गया, जिनमें एक औरत भी थी जिसे इस अपराध में फांसी दी गई थी कि उसने क़िले की दीवार पर से पत्थर गिराकर एक मुसलमान को मार डाला था।

हुदैबिया की सन्धि

काबा इस्लाम का मूल केन्द्र था, उसे हज़रत इब्राहीम व हज़रत इस्माईल ने अल्लाह के हुक्म से तैयार किया था। मुसलमानों को इस्लाम के इस केन्द्र से निकले हुए अब छः साल हो चुके थे, फिर इस्लाम के लिये इसकी परिक्रमा एक धर्म-कर्तव्य की हैसियत रखता था, इसलिए अब मुसलमानों की प्रबल कामना हुई कि वे काबा की परिक्रमा करें।

अतएव इस कामना के अन्तर्गत, जबकि हज़रत मुहम्मद स० ने भी काबे का इरादा किया, १,४०० मुसलमान साथ चलने को तैयार हो गये। उनके पास तलवारों के अलावा न तो कोई अस्त्र था और न ही उनका लड़ाई का कोई इरादा था, वे तो काबा के दर्शन और उसकी परिक्रमा के लिये निकले थे, इसीलिये साथ में क़ुरबानी के ऊंट भी ले लिये थे।

फिर भी आपने क़ुरैश के इरादे मालूम करने के लिये एक सहाबी को भेजा। वे ख़बर लाये कि क़ुरैश ने तमाम क़बीलों को इकट्ठा करके कह दिया है कि मुहम्मद मक्का में नहीं आ सकते और यह कि वे सब मुक़ाबले के लिये तैयार हो जायें। उन लोगों ने मक्का से बाहर एक स्थान पर अपनी सेनायें इकट्ठी करनी भी शुरू कर दी हैं।

हुदैबिया में पड़ाव

हुज़ूर स० इस सूचना के बावजूद भी आगे बढ़ते रहे और 'हुदैबिया' नामक स्थान पर जाकर पड़ाव डाला। यहाँ खुज़ाआ क़बीले के सरदार आपकी सेवा में उपस्थित हुए और बताया कि क़ुरैश ने लड़ाई की तैयारी कर ली है और वे आपको मक्का में दाख़िल न होने देंगे। आपने फ़रमाया

कि उनसे जाकर कह दो कि हम तो केवल उमरा[1] के विचार से यहाँ आये है, लड़ाई करना अभिप्राय नहीं है। जब यह सन्देश क़ुरैश के पास पहुँचा तो कुछ दुष्टों ने इसकी खिल्ली उड़ाई, हाँ कुछ गम्भीर स्वभाव के सरदारों ने बातचीत पर अपनी तत्परता दिखाई, जिसमें से उरवा आपके पास इसी ध्येय से आये लेकिन कोई मामला तै न हो सका। अब यह तै पाया कि सन्धि की बातचीत चलाने के लिये हज़रत उस्मान को मक्का भेजा जाये। हज़रत उसमान मक्का पहुँचे और बातचीत हुई, पर क़ुरैश किसी तरह भी तैयार न हुए कि मुसलमानों को काबे के दर्शन व परिक्रमा का अवसर दिया जाये।

फिर उन्होंने सुहैल इब्ने अम्र को दूत बनाकर भेजा। देर तक बातचीत होती रही और अन्त में सन्धि की शर्तें तै हो गईं :

ऐतिहासिक सन्धि

सन्धि में जो बातें तै हुईं, वे इस प्रकार थीं : —

(१) मुसलमान इस साल वापस चले जायें,

(२) अगले साल आयें और तीन दिन ठहर कर वापस चले जायें,

(३) हथियार लगाकर न आयें, केवल तलवार साथ रख सकते है, पर वह भी म्यान में रहेगी, बाहर न निकाली जायेगी,

(४) मक्का में जो मुसलमान बाक़ी रह गये है, उनमें किसी को अपने साथ न ले जायें और कोई मुसलमान मक्का को आना चाहे तो उसे न रोकें।

(५) मुसलमानों के पास ग़ैर मुस्लिमों में से अगर कोई व्यक्ति मदीना चला जाये तो उसे वापस कर दिया जाये, पर अगर कोई मुसलमान मक्का में आये तो वह वापस नहीं किया जायेगा।

(६) अरब के क़बीलों को अधिकार होगा कि वे मुसलमानों या ग़ैर

---

१. हज्ज के दिनों के अलावा किन्हीं दिनों में काबा की जो परिक्रमा की जाये उसे उमरा कहते है।

मुसलमानों में से जिसके साथ चाहें समझौता कर लें।

(७) यह सन्धि १० साल तक के लिये है।

एक हृदय-विदारक घटना

अभी यह सन्धि-पत्र तैयार ही हो रहा था कि सुहैल के बेटे हज़रत अबूजन्दल मक्का से किसी प्रकार भागकर यहाँ पहुँच गये और बेड़ियां पहने हुए मुसलमानों के सामने आकर गिर पड़े और रो-रोकर अपनी विपदा सुनाने लगे, फिर हुजूर से निवेदन किया कि, "मुझे शत्रुओं के पंजे से छुड़ाकर अपने साथ ले चलें।"

सुहैल ने यह देखकर कहा: —

"सन्धि की शर्तें पूरी करने का यह पहला मौका है, इसके अनुसार आप अबूजन्दल को साथ नहीं ले जा सकते।"

कितनी कठोर थी यह घड़ी — एक ओर सन्धि का विचार, दूसरी ओर इस्लाम ही के कारण सताया गया एक मुसलमान।

ऐसी वस्तुस्थिति देखकर मुसलमान तो तड़प उठे, पर आप जैसा अटल सिद्धान्तवादी, आदर्श चरित्र का स्वामी अपने सिद्धान्त पर अडिग रहा और अपने उच्च-चरित्र से यह सिद्ध कर दिया कि इस्लाम वायदों, वचनों और प्रतिज्ञाओं को पूरा करना ही सिखाता है, चाहे परिस्थितियाँ कैसी भी हों, उनके भंग करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

सन्धि हो जाने के बाद आपने हुक्म दिया कि कुरबानी मुसलमान यहीं करें। फिर आप तीन दिन तक हुदैबिया में ठहरे रहे। वापसी में सूर: फ़तह उतरी जिसने हुदैबिया की इस संधि को स्पष्ट "विजय" का नाम दिया है। हालांकि इसकी शर्तें प्रत्यक्ष रूप से मुसलमानों के ख़िलाफ़ ही पड़ रही थीं और ऐसा अनुभव हो रहा था मानो मुसलमानों ने दबकर समझौता किया है।

स्पष्ट विजय

हुदैबिया की सन्धि जिन शर्तों पर हुई थी, वे प्रत्यक्ष में तो मुसलमानों के स्वार्थ को ठेस पहुंचाने वाली दीख पड़ती थीं, पर बात ऐसी न थी। हुदैबिया की सन्धि 'इस्लाम की स्पष्ट विजय' थी – एक ऐसी विजय कि इस्लाम को जिसने राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं, बल्कि अन्तराष्ट्रीय स्तर पर आगे बढ़ने का मौक़ा दिया। यह विजय इन-इन राहों से प्राप्त हुई :–

(१) मुसलमानों और ग़ैर-मुस्लिमों में संघर्ष व लड़ाई छिड़ी होने के कारण स्थिति ऐसी पैदा हो गई थी कि दोनों पक्ष वालों को एक-दूसरे से मिलने का कोई मौक़ा न मिलता था। इस सन्धि ने इस स्थिति को ख़त्म कर दिया और मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम एक-दूसरे से मिलने लगे। ग़ैर-मुस्लिम बिना किसी झिझक के मदीना आते और महीनों वहां रहते। वे देखते कि जिन लोगों के विरुद्ध उनके मन में द्वेष व वैमनस्य समाया हुआ था, वे चरित्र के श्रेष्ठ, आचरण के अनुकरणीय, व्यवहार के खरे और विचार के शुद्ध हैं, वे देखते कि जिनसे हमने लड़ाई मोल ले रखी है उनके मन में ग़ैर-मुस्लिमों के प्रति कोई कपट व घृणा नहीं है बल्कि उन्हें जो कुछ बैर है वह उनके अशुद्ध विचारों और ग़लत रस्म-रिवाजों से है, वे देखते कि हम तो उनके ख़िलाफ़ इतना प्रोपेगण्डा करते हैं, पर ये हमारे साथ अच्छा व्यवहार ही करते हैं, भाई-चारे का व्यवहार, सहानुभूति का व्यवहार, मानवता का व्यवहार – तो वे प्रभावित हुए बिना न रहते और सोचते कि ये कैसे लोग है और ऐसा इन्हें किस चीज़ ने बना दिया है?

(२) फिर इस तरह मिलने-जुलने से ग़ैर-मुस्लिमों के मस्तिष्क में इस्लाम के प्रति जो ग़लतफ़हमियाँ थीं और उनकी जो आपत्तियाँ थीं, उनके बारे में भी आपस में ख़ूब बातचीत का मौक़ा मिलने लगा, जिससे इस्लाम का विशुद्ध रूप जब उनके सामने आया तो उनकी आँखें खुल गईं और

वे सोचने लगे कि हम इस्लाम के बारे में कितने धोखे में डाल दिये गये थे, हम अंधेरे में थे और हमें रोशनी से महरूम कर दिया गया था। इसका नतीजा यह हुआ कि उनका मन इस्लाम की ओर खिंच उठा और वे मुसलमान होने लगे।

यही कारण है कि इस सन्धि के बाद केवल डेढ़-दो वर्ष में इतने लोगों ने इस्लाम स्वीकार किया कि इससे पहले इतनी बड़ी संख्या ने कभी भी इस्लाम ग्रहण न किया था।

(३) हुदैबिया की संधि से जब इस्लाम और मुसलमानों के सबसे बड़े शत्रु ठंडे पड़ गए तो हुजूर स० को इसका अवसर मिल गया कि आप इस्लाम का प्रचार अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर कर सकें। इसी भावना के अन्तर्गत आपने बड़े-बड़े राजाओं, महाराजाओं, जागीरदारों और धनियों के नाम ऐसे पत्र लिखे जिसमें इस्लाम का सन्देश खुलकर प्रस्तुत किया गया था। इसमें से कुछ नमूने के तौर पर यहाँ दिए जाते हैं, ताकि अन्दाज़ा हो सके कि इस्लामी सन्देश के प्रचार के लिए अरब प्रायद्वीप से बाहर किस प्रकार की कोशिशें की गईं और उसकी प्रतिक्रिया क्या और कैसी हुई:-

(क) रूमी सम्राट क़ैसर के नाम

रूम के सम्राट क़ैसर के नाम जो पत्र भेजा गया वह यह था :—

आरम्भ अल्लाह के नाम से जो रहमान[१] व रहीम[२] है।

मुहम्मद की ओर से जो अल्लाह का बन्दा और उसका रसूल है।

हिरक़्ल के नाम जो रूम का सम्राट है।

जो कोई सन्मार्ग पर चले उस पर हज़ार बार शान्ति।

तत्पश्चात इस्लाम का सन्देश यह है : —

''अल्लाह की भक्ति व आज्ञापालन करो, शांति मिलेगी, अल्लाह तुम्हें

१. अनन्त दयामय

२. सतत् कृपाशील।

दुगुना बदला देगा पर अगर तुम उसके आज्ञापालन से विमुख हुए तो तुम्हारे राज्य के लोगों का पाप भी तुम्हारे ऊपर होगा।

हे ईश-ग्रन्थ रखने के दावेदारो! आओ एक ऐसी बात की ओर जो हमारे और तुम्हारे बीच एक ही है – यह कि हम अल्लाह के अलावा किसी की भक्ति न करें, उसके साथ किसी को साझीदार न ठहरायें और हममें से कोई भी अल्लाह के अलवा किसी को अपना पालनहार न बनाये, पर अगर तुम इसे मानने से इन्कार करते हो तो (हम साफ़-साफ़ कह देते है कि) तुम गवाह रहो कि हम तो अल्लाह ही की भक्ति व आज्ञापालन करने वाले हैं।"

यह पत्र हज़रत वह्या कलवी लेकर गए थे। उन्होंने इसे बसरा में हारिस ग़स्सानी को जाकर दिया जो उस समय रूम के सम्राट क़ैसर की ओर से शाम में शासन चला रहा था और उसने क़ैसर के पास भेज दिया। क़ैसर को पत्र मिला तो उसने हुक्म दिया कि अरब का कोई व्यक्ति हो तो उसे हाज़िर किया जाए। उसी ज़माने में इस्लाम और मुसलमानों के सबसे बड़े शत्रु अबूसुफ़ियान व्यापार के ध्येय से उस क्षेत्र में गए हुए थे। वह दरबार में हाज़िर किए गये। उनसे जो बातचीत हुई, लम्बी होने के बावजूद, ऐतिहासिक महत्त्व की होने के कारण हम यहाँ दे रहे हैं ताकि सही अन्दाज़ा हो सके कि इस्लामी सन्देश के पहुंचने के बाद बाहर के लोगों पर किस प्रकार की प्रतिक्रियायें हुईं।

क़ैसर : – "नबी होने का दावा करने वाले का वंश कैसा है?"

अबूसुफ़ियान : – "उनका सम्बन्ध उच्च व प्रतिष्ठित वंश से है।"

"इस वंश में किसी और ने भी नबी होने का दावा किया था?"

"नहीं।"

"क्या इस वंश में कभी कोई राजा हुआ है?"

"कभी नहीं?"

"जिन लोगों ने यह धर्म स्वीकार किया है वे धनहीन हैं या धनवान?"

"धनहीन हैं"

"उसके अनुयायी बढ़ रहे हैं या घटते जा रहे हैं?"

"बराबर बढ़ते जा रहे हैं।"

"क्या तुम लोगों ने कभी उसे झूठ बोलते पाया है?"

"कभी नहीं।"

"क्या वह अपने वायदे और दिए गये वचन भंग भी करता है?"

"अभी तक उसने कोई ऐसी बात नहीं की। अब एक नया समझौता (हुदैबिया की संधि) हुआ है, इसमें देखना है कि वह अपने वचन पर अड़ा रहता है या भंग कर देता है।"

"क्या तुमने कभी उससे लड़ाई भी लड़ी है?"

"हां, लड़ी है।"

"लड़ाई का क्या परिणाम निकला?"

"कभी हम जीते और कभी वह विजयी रहा।"

"वह क्या सिखाता है?"

"वह कहता है कि केवल एक अल्लाह की भक्ति करो, किसी दूसरे को किसी तरह भी उसका साझी न बनाओ, चरित्रवान बनो, सच बोलो, आपस में एक-दूसरे के साथ दया व सौहार्द्र का व्यवहार करो।"

इस बात चीत के बाद उसने कहा :—

"पैग़म्बर हमेशा अच्छे वंश ही में पैदा होते हैं। अगर कोई दूसरा उसके वंश में नबी होने का दावा करता तो हो सकता था कि उसका दावा भी वंश का प्रभाव समझा जाता और अगर उसके वंश में कोई राजा होता तो यह समझा जा सकता था कि शायद राजा बनने के लोभ में ऐसा कर रहा हो और जब यह तजुर्बा हो चुका है कि वह आदमियों के बारे में कभी झूठ नहीं बोला तो यह कैसे कहा जा सकता है कि उसने ईश्वर के मामले में इतना बड़ा झूठ गढ़ लिया हो कि उसने मुझे अपना दूत बनाकर भेजा है और यह भी सत्य है कि पैग़म्बरों के शुरू के अनुयायी सदा ग़रीब लोग ही हुआ करते हैं और सच्चा धर्म सदा बढ़ता ही रहता है और यह

भी सच है कि पैग़म्बर कभी किसी से छल-कपट नहीं करते। फिर तुम यह भी कहते हो कि नमाज़ पढ़ने, चरित्रवान बनने और संयम अपनाने का आदेश देता है – अगर यह सब कुछ सच है तो मुझे विश्वास है कि किसी न किसी दिन उसका अधिकार मेरे राज्य पर भी हो जाएगा। मुझे यह तो मालूम था कि एक पैग़म्बर आने वाला है, पर यह नहीं जानता था कि वह अरब में पैदा होगा। मैं अगर वहाँ जा सकता तो स्वयं उसके पाँव पखारता।"

क़ैसर के इन विचारों को सुनकर उसके दरबार के पादरी और ईसाई विद्वान अधिक क्रुद्ध हुए और इसका भय पैदा हो गया कि कहीं क़ैसर के विरुद्ध विद्रोह न हो जाए। इस भय में सत्य की वह किरण जो क़ैसर के भीतर फूट रही थी, दबकर रह गई। सच है सत्य को अपनाने में धन और सत्ता बहुत बड़ी बाधाएँ हैं।

(ख) ईरानी सम्राट किसरा के नाम

ईरान के सम्राट ख़ुसरू परवेज़ के नाम जो पत्र लिखा, वह यह था : –

"आरम्भ अल्लाह के नाम से जो रहमान व रहीम है।

मुहम्मद की ओर से जो ईश्वर का दास और उसका रसूल है।

किसरा के नाम जो ईरान का सम्राट है।

उस पर हज़ार बार शान्ति जो सन्मार्ग पर चले और अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाये और यह गवाही दे कि अल्लाह के अलावा कोई दूसरा ईश्वर नहीं है और यह कि मैं तमाम मनुष्यों के लिए उसी की ओर से भेजा हुआ पैग़म्बर हूँ ताकि हर प्राणी को मैं (उसकी अवज्ञा) के भयानक परिणाम से डराऊँ। तुम भी अल्लाह की भक्ति व आज्ञापालन अपनाओ, तुम शान्ति से रहोगे, वरन् तमाम अग्नि के पुजारियों (मजूसी) का पाप तुम्हारे ऊपर ही होगा।"

ख़ुसरू परवेज़ पत्र देखते ही आवेश में आ गया और उसे फाड़कर फेंक दिया और बोलाः – "मेरा दास होकर मुझे यों लिखता है" और

अपने यमन के गवर्नर को हुक्म भेजा कि इस पैग़म्बरी का दावा करने वाले को पकड़कर हमारे सामने हाज़िर किया जाये।

(ग) नजाशी और मिस्र के अज़ीज़ के नाम

लगभग इसी विषय के पत्र हब्श के राजा नजाशी और मिस्र के सम्राट अज़ीज़ के नाम भेजे गये। नजाशी ने इसके उत्तर में लिखा कि :—

"मैं गवाही देता हूं कि आप अल्लाह के सच्चे पैग़म्बर हैं।"

मिस्र का सम्राट यद्यपि पत्र पढ़कर इस्लाम नहीं लाया पर उसने पत्रवाहक का आदर किया और उन्हें भेंट-उपहार देकर वापिस किया।

इन पत्रों के अलावा अरब प्रायद्वीप के छोटे-बड़े राजाओं-महाराज़ाओं को भी पत्र भेजे गये थे जिनका प्रभाव भी अच्छा ही रहा।

(४) हुदैबिया की सन्धि क्या हुई थी कि हुज़ूर स० को इसका मौक़ा मिल गया कि इस्लाम और मुसलमानों के ख़िलाफ़ षड्यन्त्र रचने वाले और भिन्न-भिन्न क़बीलों में विष-वमन करने वाले यहूदियों की पूरी ख़बर ली जाये।

बात यों थी कि बनी नज़ीर का जब मदीना से बहिष्कार हुआ तो वे ख़ैबर में आकर आबाद हो गये। ख़ैबर मदीना से लगभग २०० मील उत्तर-पच्छिम की ओर स्थित है। यहाँ यहूदियों ने बड़े मज़बूत क़िले बना लिये थे। खाई वाली लड़ाई में यहूदियों ने जो चालें चली थीं, वे अपनी जगह पर, बाद में भी उन्होंने अपने षड्यन्त्रों के क्रम को जारी रखा। उनकी ये तमाम कोशिशें हुज़ूर स० को मालूम होती रहती थीं। पहले तो आपने समझौते की कोशिश की पर इसमें सफलता नहीं मिली और यहूदियों के षड्यन्त्र चलते रहे। अन्त में विवश होकर और यहूदियों की इन देश-द्रोही चालों को रोकने के लिये, आपने ख़ैबर पर हमले की तैयारियाँ शुरू कर दीं। इस हमले के लिये जो सेना साथ चली उसकी संख्या १६०० थी जिनमें २०० सवार और बाक़ी पैदल थे।

ख़ैबर में छः किले थे, उनमें २०,००० सिपाही मौजूद थे। मुसलमान

उनके क़िलों को २० दिन तक घेरे रहे, अन्त में उन्हीं को विजय मिली। इस घेरे में ९२ यहूदी मारे गये और १५ मुसलमान शहीद हुए।

मुसलमानों के विजयी हो जाने के बाद यहूदियों ने आपसे प्रार्थना की कि जो ज़मीनें अब तक उनके पास थीं वे अगर उन्हीं के क़ब्ज़े में छोड़ दी जायें तो वे मुसलमानों को आधी पैदावार देते रहेंगे। आपने उनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। फिर भविष्य में इस आधी पैदावार को हासिल करने के सिलसिले में मुसलमान कर्मचारियों ने न्याय की जो रीति अपनाई उसने धीरे-धीरे उनके दिलों को जीत लिया। ये मुसलमान कर्मचारी पैदावार की दो ढेरियां लगा देते थे और काश्तकार को यह अधिकार देते थे कि वह जिस ढेर को चाहे, पसन्द कर ले।

हुदैबिया की सन्धि से यह था मूल लाभ जो मुसलमानों को निर्विरोध मिल गया और इसलिये इस सन्धि को "स्पष्ट विजय" कहा गया. इसमें अतिशयोक्ति बिल्कुल न थी।

मुस्लिम समाज का निर्माण

यहाँ यह बात भी स्पष्ट रहनी चाहिये कि किसी भी आन्दोलन और किसी भी संस्था के लिये जिस प्रकार यह ज़रूरी होता है कि उसके प्रचार व प्रसार के साथ-साथ उसमें आये व्यक्तियों को परिस्थितियों के अनुसार तैयार किया जाता रहे, ऐसे ही हुज़ूर स० इस्लामी संस्था व इस्लामी आन्दोलन के प्रचार व प्रसार के साथ-साथ इस में आये व्यक्तियों को भी हालात के अनुसार तैयार करते रहे और उन्हें प्रशिक्षित करते रहे। फिर ऐसी स्थिति में, जबकि शान्तिमय वातावरण बन चुका था, मुसलमानो और इस्लामी समाज के निर्माण के लिये और भी अधिक कोशिशें की गईं।

इसी अवसर पर मुसलमानों को अपने व्यक्तिगत जीवन के सुधार के साथ-साथ बताया गया कि वे :—

(१) पारिवारिक व्यवस्था कैसी बनायें,

(२) विवाह व तलाक़ की समस्या कैसे हल करें,

(३) यतीमों और कमज़ोरों की देख-रेख कैसे करें और उनके अधिकार कैसे सुरक्षित रखें,

(४) विरासत किस प्रकार बाँटें,

(५) घरेलू झगड़े कैसे सुधारें,

(६) शराब पर हाथ न लगायें, इसलिये कि समाज की तमाम बुराइयों की जड़ यही है,

(७) पाक-साफ़ रहें और उसके मेयार को ऊँचा उठायें,

(८) अपने चरित्र व आचरण सुधारें, अपने में संयम व अनुशासन पैदा करें, समाज के निर्माण में ये चीज़ें सहायक होंगी।

हार क़ी जीत

हुदैबिया की सन्धि के अनुसार मुसलमानों ने एक बड़ी संख्या में दूसरे साल हज़रत मुहम्मद स० के साथ काबे का दर्शन किया और उसकी परिक्रमा भी की। इस अवसर पर मुसलमान हर्ष और उल्लास से भरे हुए थे, जिससे एक अनूठा दृश्य उत्पन्न हो गया था। इसे देखकर क़ुरैश के मन की दबी द्वेष की आग भड़क उठी और उन्हें अपना वह सन्धि-पत्र विपक्ष में दीख पड़ने लगा जिसमें उन्होंने अपनी इच्छा के अनुसार अपना पलड़ा ही भारी रखा था यहाँ तक कि उन्हें यह महसूस होने लगा कि हमारी यह जीत तो अनजाने ही हार में तबदील हो गई।

मक्के पर विजय

हुदैबिया की सन्धि के अनुसार कुछ क़बीलों ने मक्का वालों का साथ दिया था और कुछ मुसलमानों के साथ थे। इनमें ख़ुज़ाआ क़बीला मुसलमानों के साथ हो गया था और बनूबिक्र क़ुरैश से मिल गए। ख़ुज़ाआ और बनूबिक्र में वर्षों से लड़ाइयाँ ठनी हुई थीं। वीच के कुछ वर्षों में दोनों क़बीले कुछ शान्त रहे पर इधर फिर बनूबिक्र ने ख़ुज़ाआ पर धावा बोल दिया और फिर यह कि ख़ुज़ाआ के विरुद्ध बनूबिक्र की क़ुरैश ने मदद भी की, क्योंकि वे पहले ही इस बात पर ख़ुज़ाआ से रुष्ट थे कि उन्होंने क़ुरैश की इच्छा के विरुद्ध मुसलमानों से समझौता क्यों कर लिया है। तात्पर्य यह कि दोनों ने मिलकर ख़ुज़ाआ क़बीले के लोगों को क़त्ल करना शुरू कर दिया यहां तक कि जब उन्होंने काबा में शरण ली तो वहाँ भी उनको न छोड़ा और उनका खून बहाया।

क़ुरैश का इस तरह मुसलमानों के साथी व मित्र क़बीले के ख़िलाफ़ तलवार उठाने का अर्थ ही यह था कि उन लोगों ने हुदैबिया की सन्धि की शर्तों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया है। हुजूर स० को जब यह सूचना मिली तो तुरन्त आपने एक दूत भेजा कि वे ऐसा करने से रुकें और इन तीनों शर्तों में से किसी एक को स्वीकार करें, यह कि : —

(१) ख़ुज़ाआ के जो लोग मारे गये हैं उनका ख़ून बहा दिया जाये, या

(२) बनूबिक्र की सहायता न की जाए, या

(३) इसका एलान किया जाये कि हुदैबिया की सन्धि भंग कर दी गई।

क़ुरैश के सरदारों ने क़ुरैश की ओर से तीसरी बात स्वीकार कर ली। पर इनके वापस हो जाने के बाद वे बहुत पछताये और अबूसुफ़ियान को अपना दूत बनाकर मदीना भेजा कि हुदैबिया की सन्धि को पुनः जीवित

करें। लेकिन हज़रत मुहम्मद स० को जो सूचनायें मिली थीं और क़ुरै के अवतक के रवैये को सामने रखते हुए आपको सन्तोष न हुआ औ आपने अबूसुफ़ियान की बात मानने से इन्कार कर दिया।

मक्के पर चढ़ाई

फिर आपन मक्के पर आक्रमण करने की तैयारी शुरु कर दी और इस वात का ध्यान रखा कि मक्के वालों को पता न लगे। १० रमज़ान को १०,००० की सेना मक्का की ओर बढ़ी और मक्का नगर से कुछ दूरी पर रात को पड़ाव डाला। क़ुरैश को इसकी ख़बर न थी।

इस्लामी सेना जब मक्का के पास पहुँची तो अबूसुफ़ियान जो छिपकर सेना का अन्दाज़ा लगा रहे थे, गिरफ़्तार करके आपकी सेवा में लाये गये। यह वही अबूसुफ़ियान थे जो अब तक इस्लाम के विरोध में सबसे आगे थे, इन्होंने ही मदीने पर बार-बार हमले की स्कीमें बनाई थीं, यहां तक कि आपको क़त्ल करने की खुफ़िया चाल भी चल बैठे थे। ये तमाम बातें ऐसी थीं कि अबूसुफ़ियान को तुरन्त क़त्ल करा देना चाहिए था, लेकिन आपने नम्रता का ही व्यवहार किया और कहा – "जाओ आज तुमसे कोई पूछ-ताछ न होगी। ईश्वर तुम्हें क्षमा करे और वह तमाम दयालुओं से बढ़कर दयालू है।"

अबूसुफ़ियान के साथ यह मामला बिल्कुल ही अनूठा मामला था – एक ऐसा मामला जिसे न आसमान ने और न ज़मीन ने अब तक देखा है और न देखेंगे। पत्थर से पत्थर दिल भी इस व्यवहार से न पसीजेगा ता क्या होगा? अबूसुफ़ियान का मन भी फूट पड़ा सत्य की इस क़रारी विजय पर और वह मक्का वापस जाने के बजाय वहीं मुसलमान हो गये। क्या इस्लाम की सत्यता पर अब भी कोई आशंका कर सकता है? कैसा सत्य धर्म है यह इस्लाम

फिर हज़रत अब्बास को आज्ञा हुई कि अबूसुफ़ियान को पहाड़ की चोटी पर ले जाकर तनिक इस्लामी सेना का दृश्य दिखायें। थोड़ी देर के

बाद इस्लामी सेना जोश मारती हुई आगे बढ़ी। सबसे पहली टुकड़ी ग़िफ़ार क़बीले की थी, फिर जुहैनिया, हुजैम और सुलैम कबीले हथियारों से लैस 'अल्लाहु अकबर' का नारा लगाते हुए आगे निकल गये। अबूसुफ़ियान हर बार डर जाते। फिर अन्सारियों की टुकड़ी पूरे सज-धज से गरजी कि पहाड़ी गूंज गई उनके नारों से। सबके अन्त में हज़रत मुहम्मद स० दिखाई दिये।

मक्के के शरण-स्थल

मक्के में बिना किसी बाधा के आपकी पूरी सेना दाखिल हो गई। उसी समय आपने एलान कर दिया कि : –

(१) जो कोई अपने मकान के भीतर किवाड़ बन्द करके बैठ रहे उसे छोड़ दिया जाये,

(२) जो कोई अबूसुफ़ियान के मकान में चला जाये उसे भी छोड़ दिया जाये, और

(३) जो कोई काबा में छिपना चाहे उसे भी छोड़ दिया जाये।

पर इस श्रण के एलान में ऐसे छः सात व्यक्ति अपवाद थे जो इस्लाम के विरोध में आगे-आगे थे और जिनका क़त्ल कर देना ही ज़रूरी था।

काबा में प्रवेश

हुज़ूर स० ने जब काबा में प्रवेश किया तो सबसे पहले आपका हुक्म यही था कि तमाम मूर्तियां निकाल कर फेंक दी जायें, वे मूर्तियां जो अज्ञानता का चिन्ह थीं, वे मूर्तियां जो अनेकेश्वरवाद का परिचय करा रही थीं, वे मूर्तियाँ जिनकी मौजूदगी एक ईश्वर के वुजूद को चैलेन्ज कर रही थीं – हाँ, इन्हीं मूर्तियों, बेजान मूर्तियों, पत्थर की निष्प्राण मूर्तियों को फेंककर काबा को पवित्र करने का हुक्म दिया गया, इसलिए कि काबा की बुनियाद एकेश्वरवादियों ने रखी थी और इसलिए भी कि वह एक ईश्वर का 'घर' था। इसके बाद नारे लगे, काबा की परिक्रमा की गई और

फिर वहीं नमाज़ पढ़ी गई।

यह थी मक्का-विजय और उसका उत्सव, न गाजा-बाजा है, न हुल्लड़बाज़ी न रंगरलियाँ है, न लूट-मार है, न क़त्ल व ग़ारत है, न शान व शौकत है, न दम्भ व अभिमान की बातें हैं, अन्य विजेताओं की कोई चीज़ भी तो नहीं, हाँ उनके सामने हर समय उनका अपना ध्येय है, अपने अल्लाह के प्रति कृतज्ञता प्रकाशन है, विनम्रता है, सुहृदयता है और है एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति – क्या इस वास्तविकता के मानने के बाद भी कोई कह सकता है कि हुज़ूर स० सम्राट बनना चाहते थे, साम्राज्वादी थे? कैसा अन्धेर है अगर कोई ऐसा कहे।

आपका वक्तव्य

मक्का की विजय के बाद आपने जो वक्तव्य दिया उससे आपकी नीति, आपके उद्देश्य और आपके भावी कार्यक्रम को भली-भाँति समझा जा सकता है। आपने अपने वक्तव्य में कहा कि : –

"एक के सिवा अन्य कोई अल्लाह नहीं, उसके साथ कोई साझी नहीं, उसने अपना वायदा पूरा किया, उसने अपने दास व भक्त की मदद की और अन्त में उसने शत्रुओं के तमाम जत्थों को तोड़ दिया।"

फिर आपने कहा : –

"हां, सुन लो, हे क़ुरैश के लोगो! अल्लाह ने अब अज्ञानता पर फूलना और वंश पर गर्व करना – यह सब ख़त्म कर दिया। तमाम लोग आदम की नस्ल से हैं और आदम मिट्टी से बने थे।"

फिर आपने क़ुरआन की इन आयतों को पढ़ा : –

"लोगो! मैंने तुम सबको एक मर्द और एक औरत से पैदा किया है। मैंने तुम्हें क़बीलों और कुटुम्बों में इसलिए बांट दिया ताकि तुम आपस में एक-दूसरे से पहचान लिए जाओ। पर अल्लाह के निकट सबसे उच्च और कुलीन वह है जो सबसे अधिक शुद्धाचरण हो। अल्लाह जानने वाला और ख़बर रखने वाला है।" – हुजुरात-२०

आगे आपने यह भी कहा कि : –

"आज से अल्लाह ने शराब का ख़रीदना और बेचना और ब्याज का लेना-देना हराम ठहराया है।"

आपने अपनी नीति पर रोशनी डालते हुए यह भी कहा : –

'हां, दम्भ व अभिमान की तमाम बातें, पुरानी क़त्ल की दुर्घटनायें और ख़ून के बदले और इन सबके ख़ूनबहा सब मेरे क़दमों के नीचे हैं।"

आपने यह कह कर मानो अरब के उस चलन को ख़त्म कर दिया कि जिसके अन्तर्गत किसी एक क़त्ल का बदला लेने के लिए कई-कई पीढ़ी तक लड़ाई चलती रहती और जिसके फलस्वरूप पूरे अरब में अशान्ति व अव्यवस्था का दौर दौरा था।

आम माफ़ी का एलान

वह भीड़ जिनके सामने आपने यह वक्तव्य दिया था – उस भीड़ में इस्लाम और मुसलमानों के वे शत्रु – घोर शत्रु भी मौजूद थे जिन्होंने इस्लाम की नैया ही डुबोने की ठानी थी, जिन्होंने मुसलमानों की सम्पत्ति छीन ली थी और उस पर कब्ज़ा कर लिया था, जिन्होंने हुज़ूर स० को गालियाँ दी थीं, आपके रास्ते में कांटे बिछाये थे, आप पर कूड़े के टोकरे उलट दिए थे और हद यह कि आपके क़त्ल पर उतारू हो गए थे, जिन्होंने मुसलमानों को इसलिए कत्ल किया था कि वे एक ही अल्लाह को क्यों मानते हैं – आपने ऐसी ही भीड़ की ओर देखा और पूछा: –

"बताओ, क्या तुम जानते हो कि आज मैं तुम्हारे साथ क्या मामला करने वाला हूँ?"

शुरु से लेकर आख़िर तक की इस करुणा-सागर की करुणा को देखकर, मक्का प्रवेश का दृश्य निहारकर, आपके श्रण का एलान सुनकर भला वे क्या साहस जुटाते कुछ और कहने का, वे तो अनजाने ही बोल उठे : –

"आप उदार हृदय हैं और हैं उदार भाई के पुत्र।"

वास्तव में आप कितने उदार हृदय थे, आपने एलान कर ही

दिया : –

"जाओ, आज तुम पर कोई आरोप नहीं, तुम सब स्वतन्त्र हो।"

कैसे थे ये बोल, शत्रुओं के दिल पसीज गये, उनके पत्थर के दिल फट गये इस सद्व्यवहार को देखकर। बड़े-बड़े दुष्ट व क्रूर सरदार आपके क़दमों पर गिर पड़ते हैं और अनचाहे ही उनके मुख से आवाज़ निकलती है : –

"सचमुच आप अल्लाह के रसूल हैं, देश पर विजय प्राप्त करने वाले राजा नहीं, और आपका सन्देश ही सत्य सन्देश है।"

अबूसुफ़ियान की पत्नी जिसने उहद के मैदान में आपके चचा हज़रत हमज़ा के शव का अनादर किया था, उनके अंगों को काटकर हार बनाया और पहना था और उनके कलेजे को निकालकर कच्चा चबा गई थी, चादर डाले आपके सामने आती है और पुकार उठती है : –

"हे अल्लाह के रसूल! आज से पहले मुझे आपके खे़मे से अधिक और किसी से घृणा नहीं थी, पर आज से आपके खे़मे से अधिक और कोई भी मुझे प्रिय नहीं मालूम होता।"

यह था मक्का-विजय का एक चित्र, यह विजय ज़मीन जायदाद और सम्पत्ति की विजय न थी, बल्कि यह विजय हृदयों की विजय थी और यही सबसे बड़ी विजय है।

मक्का-विजय के बाद

मक्का विजय क्या हुआ, पूरे अरब पर विजय मिल गई, इसलिए कि मक्का ही शत्रुओं का केन्द्र था, ग़ैर-मुस्लिम क़बीले मक्का से ही रोशनी हासिल करते थे – पर मक्का पर इस्लाम-पताका फहराने के साथ-साथ असत्य नष्ट विनष्ट हो गया। इसी को क़ुरआन ने इन शब्दों में याद किया है : –

"सत्य आ गया, असत्य चला गया और असत्य तो जाने के लिए ही है।"

फिर अरब के दूसरे कबीलों ने इस्लाम की सत्यता पहचान ली और क़बीलों का क़बीला इस्लाम ग्रहण करने लगा। मक्का-विजय होते ही इस्लाम अधिक तेज़ी से फैल गया और फिर पूरे अरब में इस्लाम का उजाला ही उजाला हो गया।

हवाज़िन और सक़ीफ़

पर हवाज़िन और सक़ीफ़ के दो क़बीले ऐसे भी थे जिनके मन इस्लाम की इस विजय पर द्वेष व वैमनस्य की आग में जल उठे। उनके भीतर विरोध व घृणा की भावनायें तीव्र हो उठीं – यहां तक कि दोनों क़बीलों के सरदारों ने यह सलाह की कि जो कुछ भी हो, मुसलमानों का डटकर मुक़ाबला करना चाहिए और इस्लाम की इस बाढ़ पर बांध बांधना चाहिए, वरन् अब हमारी बारी है। फिर उन्होंने और दूसरे क़बीलों को भी फोड़-फोड़कर अपने में मिला लिया।

हुनैन के मैदान में

आपको जब इस स्थिति का पता चला तो आप भी १२,००० सैनिकों को लेकर आगे बढ़े। उस समय इस्लामी सेना संख्या में इतनी बड़ी थी

और उनके पास शस्त्र आदि भी इतने अधिक थे कि उसे देखकर पूरा भरोसा था कि शत्रु-सेना भाग खड़ी होगी। अपनी इस बड़ी संख्या और साज-सज्जा ही को देखकर कुछ नव-मुस्लिमों के मुख से ये शब्द भी निकल गए कि, "आज हम पर कौन विजय पा सकता है।" पर यह विचार मुसलमान को शोभा नहीं देता। उसे तो अपनी शक्ति पर नहीं, बल्कि ईश्वर की शक्ति पर भरोसा होना चाहिये।

अतएव इस अभिमान के दण्डस्वरूप, शत्रुओं के वाणों से परेशान होकर और उनके वीरता भरे हमलों से घबड़ाकर मुस्लिम सेना बौखला उठी, उनकी पंक्तियां टूट गईं और थोड़ी देर के लिये उनके क़दम उखड़ गए। वह तो कहिए कि फिर अल्लाह की विशेष कृपा हुई कि निष्ठावान मुस्लिम सेनानियों के पराक्रम और आपके जमाव ने पांसा पलट दिया, वरन् यह तै था कि उस दिन इनकी बड़ी संख्या इनके कुछ काम आने वाली न थी। इस लड़ाई में शत्रुओं के लगभग ७० व्यक्ति मारे गये और हज़ारों क़ैद हुए।

शत्रुओं का गढ तायफ़

शत्रुओं की बाक़ी सेना ने भागकर तायफ़ में शरण ली। यहां भी मुसलमानों ने उनका पीछा किया, तब तक वे तायफ़ के एक मज़बूत व मशहूर क़िले में घुस चुके थे। क़िले को घेर लिया गया। यह घेरा लगभग २० दिन तक चलता रहा, पर जब आपको अच्छी तरह अन्दाज़ा हो गया कि शत्रुओं की शक्ति टूट चुकी है और उनमें अब कसबल बाक़ी नहीं है तो आपने घेरा उठा लिया और उनके लिये प्रार्थना कीः –

"हे अल्लाह! तू सक़ीफ़ वालों को सन्मार्ग दिखा और उन्हें इसका अवसर दे कि वे मेरे पास हाज़िर हो जायें।"

कैसी थी यह प्रार्थना और कितने मधुर थे ये बोल! क्या रसूल के अलावा भी कोई इतना दयालु व उदार हो सकता है! इसी का ही फल हुआ कि दो साल भी नहीं बीतने पाए थे कि सक़ीफ़ के लोगों ने स्वयं मदीने में हाज़िर होकर इस्लाम को ग्रहण कर लिया।

एक और भय

अरब प्रायद्वीप में इस्लाम की बढ़ती हुई शक्ति और उसका प्रसार कुछ ढकी-छिपी चीज़ तो थी नहीं, इसकी सूचनाएं अरब से बाहर भी पहुँचने लगीं और सुन-सुनकर उनमें बौखलाहट और बेचैनी की लहर दौड़ने लगी।

उस समय रूमी राज्य पर ईसाइयों का आधिपत्य था। इस रूमी साम्राज्य की मातहती में कुछ अरब ईसाई क़बीले भी थे जिनमें ग़स्सान अपनी शक्ति के लिए अधिक प्रसिद्ध थे। रूमी शासकों ने सबसे पहले ग़स्सान क़बीले को इस पर तैयार किया कि वह इस्लाम का नाश करने के लिये तैयार हो जाये।

शाम के नबती व्यापारियों ने आकर हुज़ूर स० को जब बताया कि रूमियों ने मदीना पर चढ़ाई करने के लिए बहुत बड़ी सेना तैयार कर ली है जो अस्त्र-शस्त्र से लैस है, तो आपके लिए इस पर विश्वास करने के अलावा और कोई मार्ग ही न था, इसलिए कि इससे पहले भी इन्हीं रूमियों ने १५ मुसलमानों को क़त्ल कर दिया था और बसरा के शासक शर्जील ने तो मुसलमानों के दूत हज़रत हारिस इब्ने उमैर का ही वध करा दिया था। बसरा का यह शासक भी रूमी शासन की मातहती में था।

ऐसी स्थिति को देखकर हुज़ूर स० ने मुसलमानों को तैयारी का हुक्म दे दिया।

एक कड़ी आज़माइश

आपने लड़ाई के लिए तैयार रहने का हुक्म तो दे दिया, पर सच पूछिए तो यह एक कड़ी आज़माइश थी उन तमाम लोगों के लिए जो मुसलमान होने का दावा करते थे – देश में सूखा पड़ा हुआ था, कड़ी गर्मी पड़ रही थी, फ़सल पकने के क़रीब थीं, लड़ाई के सामान भी तैयार न थे, बहुत दूर की यात्रा थी और मुक़ाबला उस राज्य की सेना से था

जिसकी शक्ति मानी हुई थी – फिर भी उत्साही व निष्ठावान मुसलमानों ने अपने उत्साह व उमंग का परिचय दिया। उन्होंने बड़ी-बड़ी रकमें लड़ाई के खर्च के लिये लाकर रख दीं और हर तरह से आपकी सहायता की।

सारांश यह कि आप ३०,००० सेना के साथ मदीना से निकले जिसमें से १०,००० सवार भी थे। 'तबूक' पहुँच कर मालूम हुआ कि रूमियों के आक्रमण की सूचना सही न थी, किन्तु इतना अवश्य था कि इस्लाम की बढ़ती शक्ति का मुक़ाबला करने के लिए 'ग़स्सानी' दौड़-धूप कर रहे थे। आप तबूक में २० दिन तक पड़ाव डाले रहे। इसका प्रभाव यह हुआ कि ३०,००० मुसलमानों की सेना ने अपने जिस उत्तम चरित्र व आचरण का प्रमाण दिया, उसके फल-स्वरूप वहाँ के बहुत से छोटे-छोटे राज्य जो, रूमी साम्राज्य की मातहती में थे, इस्लामी हुकूमत के अधीन आ गये।

मुनाफ़िक़ और षड्यन्त्र

अब तक की परिस्थितियां कुछ ऐसी थीं कि मुसलमानों को बाहर के शत्रुओं का ही मुक़ाबला करना पड़ रहा था, भीतर के पंचगामियों और शत्रुओंके एजेण्टों से निबटने का कोई विशेष अवसर न मिल सका था. पर 'तबूक' की लड़ाई के इस एलान ने मुनाफ़िक़ों को समझने और उनसे वैसा ही व्यवहार करने का सुन्दर अवसर प्रदान किया। ज़रूरत भी इसकी थी कि उन्होंने अपने चेहरे पर ईमान और इस्लाम का जो पर्दा डाल रखा था, वह हटे और उनकी असल हैसियत पूरे मुस्लिम समाज को मालूम हो और उनके लिए फिर यह मौक़ा बाक़ी न रहे कि वे मुसलमानों के मामले में मुसलमान बनकर दख़ल देते रहें और उन्हें मुसलमानों में वही स्थान मिले जो सच्चे मुसलमानों को प्राप्त था।

तबूक की लड़ाई के एलान के बाद तो सच्चे मुसलमान अपना सब कुछ लुटाकर आपके साथ चलने पर तैयार हो गए और जो अपनी किसी उचित विवशता के कारण न जा सके, वे तो रो दिए, पर मुनाफ़िक़ों की

तो लड़ाई का एलान सुनकर जान ही निकल गई। उन्होंने भाँति-भाँति के बहाने गढ़ने शुरू कर दिये और लड़ाई पर न जा सकने में अनुचित असमर्थता प्रकट करने लगे। इन मुनाफ़िक़ों ने केवल इतना ही नहीं किया कि ख़ुद नहीं गये, बल्कि वे दूसरों को भी बहकाते, और उन्हें भाँति-भाँति के डरावे और धमकियाँ दे देकर लड़ाई पर जाने से रोकते।

कभी कहते :— "गर्मी कड़ी है, कहाँ जाओगे?"

कभी कहते :— "भला रूमी साम्राज्य से लड़कर अपने को तबाह कौन करे?"

कभी कहते :— "रूम की सेनाओं के आगे ये मुट्ठी-भर मुसलमान कर ही क्या सकते हैं? क्या अकेले चने ने कभी भाड़ फोड़ा है, जो ये चले हैं—आज़माने को?"

ये और ऐसी ही बातों और रवैयों ने सच्चे मुसलमानों और मुनाफ़िक़ों की हैसियतों को खोलकर रख दिया। इस तरह अब यह सम्भव हो गया कि उनके विरुद्ध कारवाई की जाये।

फिर इतना ही नहीं कि मुनाफ़िक़ों ने मुसलमानों के तबूक को जाते समय ही अपनी हैसियत साफ़ कर दी हो, बल्कि मुस्लिम सेना के जाते ही भिन्न-भिन्न प्रकार के षड्यन्त्र रचने लगे थे, इसलिए कि उन्होंने स्वयं ही अटकल से यह विश्वास कर लिया था कि मुसलमान इस अभियान से सकुशल वापस न होंगे, कुछ तो मौसम की ख़राबी और यात्रा में आई विपदाओं का शिकार हो जायेंगे और बाक़ी को तो क़ैसर की असीम सेना हज़म कर जायेगी।

आपस में खुफ़िया सलाह व मश्विरे के लिए इन लोगों ने एक मस्जिद भी बना ली थी, जहाँ ये नमाज़ के बहाने आम मुसलमानों से अलग जमा होते थे। वहीं पर इन लोगों ने यह भी तै किया था कि मुसलमानों के इस तरह कुचले जाने के बाद अब्दुल्लाह इब्ने उबई को मदीना का सम्राट बनाया जाएगा।

पर जैसा कि मुनाफ़िक़ों का अनुमान था, उसके ठीक विपरीत मुसलमान भारी सफलता के साथ तबूक से वापस हुए। ऐसा सुनते ही

मुनाफ़िक़ों की तो जैसे कमर टूट गई और उन्हें ऐसा महसूस हुआ कि अब उनकी उम्मीदों का आख़िरी सहारा भी उनके हाथ से छूट गया।

वापसी के बाद

अभी हज़रत मुहम्मद स० तबूक से मदीना को वापस भी नहीं हुए थे कि रास्ते ही में सूरः तौबा उतरी, जिसमें रसूल स० को बताया गया कि अब तक मुनाफ़िक़ों के प्रति जो नम्र नीति अपनाई गई है और उनके जिन बहानों को स्वीकार करके उन्हें लड़ाई के मैदान में उतरने में असमर्थ समझ लिया गया है, इस नीति को बिल्कुल बदल दिया जाये और उनके साथ कठोरता का व्यवहार किया जाये। यह भी साफ़-साफ़ कह दिया गया कि अगर वे अपने ईमान के दावे को सही सिद्ध करने के लिए कुछ आर्थिक सहायता भी करना चाहें तो उसे स्वीकार न किया जाए, उसमें का अगर कोई मर जाए तो नबी स० जनाज़े की नमाज़ न पढ़ायें, मुसलमान उनसे मित्रता का व्यवहार न रखें, आदि।

मदीना वापस होने के बाद फिर आपने ऐसा ही किया।

इसी मौक़े पर कुछ निष्ठावान मुसलमानों से भी सुस्ती के कारण ग़लतियां हो गईं जिससे पता चलता था कि मुसलमानों के आचरण में अभी त्रुटि मौजूद है। ऐसे मुसलमानों को भी उचित दण्ड देकर उन्हें शुद्ध व खरा बना दिया गया।

इस्लामी राज्य की नीति

इस्लामी आन्दोलन को शुरू हुए २२ वर्ष हो चुके थे। इतने दिनों के अथक परिश्रमों के बाद अब अरब का कण-कण इस्लाम के प्रकाश से प्रकाशमान हो रहा था। उसका सन्देश कोने-कोने में पहुंच चुका था। यमन की सीमा से लेकर शाम की सीमा तक का क्षेत्र 'इस्लामी राज्य' बन चुका था। अब समय इसका आ गया कि इस्लामी राज्य की नीति का सार्वजनिक एलान किया जाये। अतएव सन् ०९ हि० के हज्ज के अवसर पर, जबकि

अरब के तमाम क़बीलों के प्रतिनिधि मक्का में जमा होते हैं, नीति का एलान कर दिया गया। इस्लामी राज्य की जो नीति बनी वह इस प्रकार थीः —

(१) आज से अरब राज्य का सरकारी धर्म 'इस्लाम' होगा और अनेकेश्वरवादी व्यवस्था को भंग किया जाता है।

(२) इस वर्ष के बाद कोई भी अनेकेश्वरवादी काबा के हज्ज के लिये न आएगा।

(३) काबा के चारों ओर नंगे होकर घूमने की आज्ञा किसी को न दी जायेगी।

(४) जिन लोगों के साथ पैग़म्बरे इस्लाम का समझौता चल रहा है और जिन्होंने अपने समझौते की अवधि तक उसे भंग नहीं किया है, उनके साथ उस समझौते की अवधि तक वही मामले बाक़ी रखे जाएंगे जिनके बारे में समझौता हुआ है। पर जिन लोगों ने समझौता होने के बाद भी इस्लाम और मुसलमानों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचे हैं, उन्हें सूचित किया जाता है कि बस उनके लिए अब ४ महीने की कुल और छूट है। इसमें चाहें तो वे मुसलमानों से लड़कर अपने भाग्य का निर्णय कर लें, या देश छोड़कर चले जायें, या फिर सोच-समझकर इस्लाम स्वीकार कर लें और इस्लामी व्यवस्था में शामिल हो जायें।

(५) काबे का प्रबन्ध अब पूरी तरह एकेश्वरवादियों के हाथ में रहेगा। अनेकेश्वरवादियों का इसमें कोई दख़ल न होगा और अब काबे में कोई भी अनेकेश्वरवादी रीति न अपनाई जायेगी।

आख़िरी हज्ज और मृत्यु

सन् १० हि० को आपने हज्ज का इरादा किया। इस इरादे का मालूम होना था कि पूरा अरब साथ चलने के लिए उमड़ पड़ा। ज़ीक़ादा की २६ को आपने स्नान किया। चादर और तहमद बांधी। ज़ुहर की नमाज़ के बाद आप मदीने से बाहर निकले। मदीना से ६ मील की दूरी पर ज़ुलहुलैफ़ा के स्थान पर रात बिताई और दूसरे दिन फिर स्नान किया, दो रकात नमाज़ पढ़ी और अहराम[1] बांध कर, ऊंटनी पर सवार होकर, ऊँचे स्वर में ये शब्द कहे जिसे आज तक हर हाजी कहता है :–

"हे अल्लाह, हम तेरे लिए हाज़िर हैं, हे अल्लाह! हम तेरे लिए हाज़िर है, तेरा कोई साझी नहीं, हम तेरे सामने हाज़िर है, तेरी ही प्रशंसा है, तेरी ही नेमतें हैं, और तेरा ही राज्य है, तेरा कोई साझी नहीं।'

उस समय जनता की भीड़ का हाल यह था कि हज़रत जाबिर के कथनानुसार आगे-पीछे दायें-बायें जहां तक नज़र काम करती थी आदमियों का समुंद्र नज़र आता था। जब हुज़ूर 'हे अल्लाह! हम तेरे लिये हाज़िर हैं' फ़रमाते तो इसके साथ ही लगभग १,००,००० व्यक्तियों की ज़ुबान से भी यही आवाज़ निकलती और एक समां बंध जाता।

इस तरह आप थोड़ा-थोड़ा करके आगे बढ़ते चले गये और रविवार को अर्थात् ५ ज़िलहिज्जा को आप मक्का में दाख़िल हुए। काबा दीख पड़ा तो फ़रमाया :–

"हे ईश्वर! और प्रतिष्ठा व बड़ाई दे।"

आपने क़ाबा की परिक्रमा की और नमाज़ पढ़ी।

---

१. एक प्रकार का वस्त्र जो हाजी लोग हज्ज करते समय बाँध लेते हैं।

९ ज़िलहिज्जा की सुबह की नमाज़ पढ़कर अरफ़ात के खुले मैदान में आपने वह ऐतिहासिक वक्तव्य दिया जिसमें इस्लामी सिद्धान्तों को खोल-खोल कर बता दिया गया। उसका कुछ अंश निम्न पंक्तियों में दिया जा रहा है :

"सुन रखो, अज्ञानता का पूरा विधान मेरे दोनों पांवों के नीचे है।"

"अरब को ग़ैर अरब पर और ग़ैर अरब को अरब पर कोई श्रेष्ठता प्राप्त नहीं। तुम सब आदम की औलाद हो और आदम मिट्टी से पैदा हुए थे।"

"मुसलमान-मुसलमान आपस में भाई-भाई हैं।"

"तुम्हारे सेवक! तुम्हारे सेवक!! जो ख़ुद खाओ, वह उनको खिलाओ, जो ख़ुद पहनो, वही उनको पहनाओ।"

"इस्लाम आने से पहल के तमाम ख़ून ख़त्म कर दिए गये (अब किसी को किसी से पुराने ख़ून का बदला लेने का हक नहीं) और सबसे पहले मैं अपने कुटुम्ब का ख़ून – रबीआ इब्ने हर्स का ख़ून ख़त्म करता हूँ।"

"इस्लाम से पहले के कुल ब्याज भी बेकार कर दिए गये (अब किसी को किसी से ब्याज मांगने का हक नहीं) और सबसे पहले मैं अपने कुटुम्ब का ब्याज – अब्बास इब्ने अब्दुलमुत्तलिब का ब्याज खत्म करता हूँ।"

"औरतों के मामले में अल्लाह से डरो, तुम्हारा औरतों पर और औरतों का तुम पर अधिकार है।"

"तुम्हारा खून और तुम्हारा माल कयामत (प्रलय) तक के लिए एक-दूसरे के लिये हराम है (अर्थात् आदरणीय हैं) ऐसे ही, जैसे यह दिन, यह महीना और यह शहर हराम् है।"

"मैं, तुम में एक चीज़ छोड़े जाता हूँ, अगर तुमने उसे मज़बूती से पकड़ लिया तो गुमराह न होगे और वह है ईश्वर का ग्रन्थ अर्थात् क़ुरआन।"

इसके बाद आपने और बहुत-से आदेश दिए, फिर भीड़ की ओर

चेहरा करके पूछा : –

"तुमसे अल्लाह के यहां जब मेरे बारे में पूछा जायेगा तो तुम क्या कहोगे?" भीड़ ने चिल्लाकर कहा : –

"हम कहेंगे कि आपने अल्लाह का सन्देश पहुँचा दिया और अपना कर्त्तव्य पूरा किया।"

आपने आसमान की ओर अंगुली उठाई और तीन बार कहा : – "हे अल्लाह! गवाह रहना।"

और ऐसे ही अवसर पर क़ुरआन की आयत उतरी : –

"आज मैंने तुम्हारे लिए धर्म को पूर्ण कर दिया और अपनी नेमत पूरी कर दी और तुम्हारे लिये इस्लाम को एक धर्म की हैसियत से पसन्द कर लिया।"

इस हज्ज के मौक़े पर आपने हज्ज के तमाम तरीक़े ख़ुद करके दिखाये कि हज कैसे करना चाहिए।

इसी मौक़े पर आपने यह भी फ़रमाया कि : –

"मुझसे हज्ज के तरीक़े सीख लो। मै नहीं जानता कि इसके बाद मैं दूसरा हज्ज कर सकूँगा या नहीं।"

इसी अवसर पर आपने तमाम मुसलमानों से यह भी कहा : –

"जो लोग इस समय मौजूद हैं वे (ये सब बातें) उन तक पहुंचायें जो मौजूद नहीं हैं।"

बीमारी

पुण्यात्मा को इस नश्वर संसार में उसी समय तक रहने की आवश्यकता थी, जब तक कि सत्य पूरी तरह असत्य पर छा जाये अब चूँकि सत्य ने पूरी तरह असत्य को अपने वश में ले लिया था, इसलिए आपको अल्लाह की ओर लौटने का आदेश भी आ पहुंचा।

सफ़र सन् ११ हि० की १८ या १९ को आपकी तबीयत कुछ गिरने लगी। यह बुधवार का दिन था, सोमवार को रोग अधिक बढ़ गया। जब

तक शक्ति रही, आप मस्जिद में आते रहे और नमाज़ पढ़ाते रहे। सबसे आख़िरी नमाज़ जो आपने पढ़ाई वह मग़रिब की नमाज़ थी। सिर में दर्द था। इशा तक कमज़ोरी बढ़ गई और आप मस्जिद न आ सके, फिर कई दिन तक आपके हुक्म से हज़रत अबूबक्र नमाज़ पढ़ाते रहे।

अन्तिम वक्तव्य

बीच में एक दिन आपकी तबीयत कुछ संभली तो आपने स्नान किया, मस्जिद आए और एक वक्तव्य दिया। यह आपके जीवन का अन्तिम वक्तव्य था। आपने कहा : –

"अल्लाह ने अपने एक बन्दे (दास) को अधिकार दिया कि चाहे तो वह संसार की नेमतों को अपनाये, या उसके पास आख़िरत (परलोक) में जो कुछ है उसे स्वीकार करे। पर उसने अल्लाह ही के पास की चीज़ें स्वीकार कीं।"

"यह सुनकर हज़रत अबूबक्र समझ गये कि इशारा किस ओर है और आप रो पड़े। आपने आगे कहा : –

"सबसे अधिक मैं जिसके सहयोग का आभारी हूं, वह अबूबक्र हैं। अगर मैं संसार में अपने अनुयायियों में से किसी को मित्र बना सकता तो अबूबक्र को बनाता, पर इस्लाम का नाता मित्रता के लिये काफ़ी है।"

"और हां, सुन लो तुमसे पहले की जातियों ने अपने पैग़म्बरों और धर्मात्माओं की क़ब्रों को पूज्य बना लिया, देखो तुम ऐसा न करना, मैं तुम्हें मना किये जाता हूं।"

फिर फ़रमाया : –

"हलाल और हराम मुझसे सम्बन्धित न किए जायें। मैंने वही चीज़ें हलाल की हैं, जो अल्लाह ने हलाल की हैं और वही चीज़ें हराम की हैं, जो अल्लाह ने हराम की हैं।"

इसी बीमारी ही की हालत में एक दिन आपने अपने परिवार वालों से कहा :

"हे रसूलुल्लाह की बेटी फ़ातिमा! और हे अल्लाह के रसूल की फूफी सफ़िया! कुछ कर लो जो अल्लाह के यहाँ काम आए। मैं आख़िरत में तुम्हें नहीं बचा सकता।"

देहान्त

कभी रोग बढ़ जाता, कभी कम हो जाता। जिस दिन देहावसान हुआ, उस दिन बेचैनी बहुत कम थी, पर ज्यों-ज्यों दिन चढ़ता गया आप पर बेहोशी छाती गई। वह दिन सोमवार का था। ऐसी स्थिति में आपके मुंह से ये शब्द बार-बार निकलते रहे :–

"उन लोगों के साथ जिन पर अल्लाह ने कृपा की।"

"अल्लाह तो बहुत बड़ा साथी है।"

"यही कहते-कहते आपकी सांस उखड़ने लगी और देहान्त हो गया।"

इन्नालिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन।

(हम सब ईश्वर ही के लिये हैं, और हमें भी उसी की ओर लौटकर जाना है।)

आपका देहान्त सन् ११ हि०, रबीउलअव्वल की १२ तारीख़ को हुआ।

व्यक्तित्त्व और परिचय

एक झलक

आप अति सुन्दर थे और आपका चेहरा ऐसे चमकता था, मानो सूर्य चमक रहा हो। चेहरा हल्की गोलाई लिए हुए था, जैसे पहलीका चन्द्रमा, माथा चौड़ा था। कटारीदार भौं, पर दोनों अलग-अलग थीं, क्रोध के समय बीच में एक नस प्राय उभर आया करती।

आप गोरे थे, रंग न चूने की तरह सफ़ेद था, न सांवला ही था। बल्कि गेहुंआँ था, ऐसा, जिसमें सफ़ेदी अधिक हो।

आंखें काली थीं, पुतलियां भी काली थीं, आंखें बड़ी थीं और सफ़ेद हिस्से में लाल-लाल डोरे भी दीख पड़ते थे, पलकें लम्बी थीं, लज्जा से आंखें हर समय नीची ही रहतीं।

नाक उभरी और कुछ ऊपर उठी हुई थी, इसीलिये पहली नज़र में बड़ी दीख पड़ती। गाल समतल और बराबर थे, नीचे को तनिक भर मांस ढलका हुआ था।

दांत चमकते हुए थे, जिससे सुन्दरता और बढ़ जाती। बोलते तो दांतों से चमक-सी निकलती मालूम होती। दाढ़ी भरी-भरी और बाल अधिक थे। गर्दन पतली, लम्बी थी, मानो किसी मूर्ति के लिये कलात्मक रूप से गढ़ी गई हो, सिर बड़ा तो था, पर बेडौल न था।

आपके बाल किसी हद तक घुंघराले थे, ऐसे कि न बिल्कुल सीधे तने हुए और न ही अधिक घुमड़े हुए। बाल घने थे और लम्बे थे, इतने कि कभी-कभी कानों की लौ तक आ जाते और कभी कंधों पर जा पड़ते। आप

बीच से मांग निकालते और बालों को संवारते। शरीर पर बाल अधिक न थे, सीने से डोंढ़ी तक बालों की पतली-सी धारा थी और बस, कन्धों, भुजाओं और सीने के ऊपरी भाग पर भी थोड़े बाल थे।

आपका शरीर गठीला था, जोड़ों की हड्डियाँ बड़ी और मज़बूत थीं। शरीर में भद्दापन कदापि न था। क़द न अधिक लम्बा और न आप नाटे ही थे, हां कुछ लम्बाई लिये हुये थे, इस तरह कि भीड़ में आप दूसरों से निकलते दीख पड़ते। पेट बाहर को निकला हुआ न था। देखने में आप अधिक स्वस्थ और सेहतमन्द थे, हालांकि उपवास आदि आपके जीवन के संगी बन गये थे। आपके शरीर से वीरता और शक्ति टपक पड़ती थी।

सीना चौड़ा था और सीना और पेट के बीच का भाग समतल था। कन्धों के बीच की दूरी अधिक थी और उन पर मांस चढ़ा हुआ था।

कलाइयाँ चौड़ी थीं, हथेलियां फैली हुई थीं। उंगलियाँ लम्बी थीं और नर्म थीं।

वस्त्र और पहनावा

किसी व्यक्तित्व से परिचय प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार चेहरे-मोहरे का ज्ञान ज़रूरी है वैसे ही ज़रूरी है कि उसके वस्त्र, पहनावा, लम्बाई, चौड़ाई, रंगों का चुनाव, स्तर, सफ़ाई और ऐसी ही दूसरी चीज़ों को भी जाना जाये जो बता देती हैं कि वह व्यक्ति कैसा है और उसके आचार-विचार क्या हैं, आदि जैसे :—

आपको ठाट-बाट से चिढ़ थी, इसलिए कि इससे दम्भ व अभिमान का भास होता है। आप रेशम आदि के वस्त्रों को अधिक नापसन्द करते थे। आप कहते : —

"मैं तो ख़ुदा का एक बन्दा (भक्त) हूं और बन्दों जैसा वस्त्र पहनता हूँ।" लम्बी कमीज़ों, तहमदों और लटकती हुई पगड़ियों से आप को घृणा थी, इसलिए कि आप इसे अभिमानियों का वस्त्र कहते थे।

आपको कुर्ता, (कमीज़) बहुत पसन्द था, ऐसा कुर्ता कि जिस की बाहें न तंग हो, न अधिक खुली हुई और आस्तीन कलाई और हाथ के जोड़

तक पहुँचती हो।

कुर्ता पहनते समय पहले सीधा हाथ डालते, फिर उल्टा।

जीवन भर आप तहमद पहनते रहे जिसे ढोंढ़ी से तनिक नीचे बांधते और टखनों से कुछ ऊंचा रखते। आपने पाजामा देखा तो पसन्द किया। सिर पर अमामा (पगड़ी) बांधना पसन्द करते थे। कभी अमामा न होता तो कपड़े का एक टुकड़ा (रूमाल) पट्टी की भांति सिर से बांध लेते। अमामा के अलावा कभी उजली टोपी भी ओढ़ते, घर में ओढ़ने की टोपी सिर से चिमटी हुई होती, यात्रा में होते तो, उठी हुई बाड़दार टोपी इस्तेमाल फ़रमाते।

ओढ़ने की चादर ४ गज़ लम्बी २। गज़ चौड़ी होती थी। कभी लपेट लेते, कभी एक पल्ला सीधे बगल से निकाल कर उलट कर डाल लेते, यही चादरे कभी बैठे होने पर टांगों के चारों ओर लपेट लेते, कभी इसी को तह करके तकिया भी बना लेते और कभी अपने किसी अतिथि के आदर-सत्कार में इसे बिछा भी देते। यहाँ यह बात ध्यान में रहे कि आपके वस्त्र साधारण अवश्य होते थे पर गन्दगी से आपको घृणा थी। एक बार आपके लिए काली चादर बनवाई गई। उसे ओढ़ा तो पसीने के कारण गन्ध पैदा हो गई फिर आपने उसे नहीं ओढ़ा। नया कपड़ा अल्लाह का गुणगान करके पहनते, मुख्य रूप से जुमा (शुक्रवार) के दिन। आवश्यकता से अधिक जोड़े बनवाकर न रखते, कपड़ों में खुद ही पैबन्द (जोड़) लगा लिया करते।

आपको सफेद रंग के कपड़े अधिक पसन्द थे, इसके बाद हरा रंग पसन्द करते थे, इस प्रकार कि कपड़े पर हल्की हरी धारियाँ हों। गहरा लाल रंग तो बहुत ही नापसन्द था।

आपका जूता उसी समय के प्रचलित चप्पल या खड़ाऊँ जैसा था जिसमें दो फ़ीते लगे हुए थे। एक अंगूठे और साथ वाली उंगली के बीच में रहता, दूसरा छगुलियों और उसके साथ वाली उंगली के बीच में। जूते पर बाल न होते। आप जूतों को पहनते समय पहले दाहिना पांव डालते, फिर बायां और उतारते समय पहले बायां पांव फिर दाहिना।

साज-सज्जा

आप अपने बालों को सजाकर ढंग से रखते। उनमें प्रायः तेल डाला करते, कंघा करते, मांग निकालते। घर पर हों या बाहर, आप सात चीज़ें सदा अपने साथ रखते : —

(१) तेल की शीशी, (२) कंघा, (३) सुरमेदानी, काले रंग की (४) क़ेंची, (५) मिस्वाक, (दातून) (६) आइना, (दर्पण) (७) लकड़ी की एक पतली खपच।

रात को सोते समय सुर्मा की तीन-तीन सलाई दोनों आंखों में लगाते, आख़िर रात में ज़रूरत से फ़ारिग होकर वुज़ू करते, कपड़ा मांगते और ख़ुशबू लगाते। रैहान की ख़ुशबू पसन्द थी। घर में ख़ुश्बूदार धूनी लिया करते। एक इत्रदान था जिसमें सर्वोत्तम ख़ुशबू मौजूद रहती और प्रयोग में आती।

चाल

आप गम्भीर चाल चलते, जिससे आपकी सज्जनता, महानता और ज़िम्मेदारी की भावना का भास होता, चलते तो दृढ़ता से क़दम जमाकर चलते, ढीले-ढाले तरीक़े से क़दम घसीटकर नहीं,शरीर सिमटा हुआ रहता, दाहिने-बांयें देखे बिना ही चलते, ताक़त से क़दम उठाते, कुछ आगे को झुके हुए चलते, ऐसा मालूम होता कि आप उंचाई से नीचे को उतर रहे हैं, रफ़्तार तेज़ होती, क़दम खुले-खुले रखते।

बातचीत

आपकी बातचीत, विषयों और शब्दों का चयन, वाक्यों की बनावट, आवाज़ का उतार-चढ़ाव, शैली और उच्चारण, इन तमाम चीज़ों से आपका ईमान, आपका चरित्र, आपका आचरण और आपका व्यक्तित्व पूरी तरह निखर कर सामने आ जाता।

आप बोलते तो इतने धीरे-धीरे और ठहर-ठहर कर कि सुनने वाला आसानी से याद कर लेता, बल्कि साथ-साथ शब्दों को भी गिन लिया जा सकता था, शब्द ज़रूरत से न कम होते, न अधिक, न बहुत कम बोलते, न बहुत ज़्यादा। समझाने और याद करने के लिए मुख्य-मुख्य शब्दों और वाक्यों को तीन बार दोहराते थे। अगर कोई बात स्पष्ट रूप से कहना न चाहते तो इशारों में कहते। गन्दी और फूहड़ बातों से घृणा थी। बातचीत के समय प्रायः मुख पर मुस्कान क्रीड़ा करती रहती। अपनी बात स्पष्ट करने के लिए हाथों और उंगुलियों के संकेतों से ही काम लेते। महत्वपूर्ण मामलों पर बातचीत करते समय सीधे हाथ को उलटे हाथ के ऊपरी भाग पर रखकर उंगलियों में उंगलियां डाल लेते, आश्चर्य के अवसर पर हथेली को उलट देते, कभी सीधे हाथ की हथेली को उलटे हाथ के अंगूठे के भीतरी भाग पर मारते, कभी सिर हिलाते और होठों को दांतों से दबाते और कभी हाथों को रान पर मारते।

आपकी भाषा बड़ी शुद्ध होती, जिसका साहित्यिक स्तर अधिक ऊँचा होता, फिर भी उसमें सबकी समझ में आने योग्य सरलता भी होती और फिर विशेष बात यह कि आपने किसी घटिया और बाज़ारी शब्द का प्रयोग न किया। यह सत्य ही है कि आपने अपने सन्देश और अपने उद्देश्य की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर स्वयं अपनी एक भाषा पैदा की थी और एक शैली बनाई थी, जिसमें नई-नई परिभाषायें थीं, नए-नए मुहाविरे थे, उपमायें थीं, उदाहरण थे और वक्तव्य के नए-नए तरीक़े थे। यही कारण था कि चकित होकर क़बीला बनू नहद के लोगों ने एक बार आपसे पूछ ही लिया : –

"हे अल्लाह के नबी! हम आप एक ही माँ-बाप की औलाद हैं, एक ही जगह पले-बढ़े हैं, फिर यह क्या बात है कि आप ऐसी अरबी में बात करते हैं कि जिसकी सूक्ष्मताओं को हममें से बहुतेरे नहीं समझ पाते?"

आपने फर्माया और ख़ूब फ़र्माया : –

"मुझे भाषा के सम्बन्ध में स्वयं अल्लाह ने प्रशिक्षित किया और मेरी साहित्यिक रूचि को अति सुन्दर बनाया और मैं साद क़बीले के शुद्ध भाषा

बोले जाने वाले वातावरण में पला-बढ़ा हूं।"

आपके शुद्ध और नपे-तुले वाक्य आज कहावत बन गये हैं, कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं : –

"बेटा उसका जिसके बिस्तर पर (घर में) पैदा हो और ज़िना करने वाले के लिए पत्थर।"

"बुराई से रुक जाना भी नेकी है।"

"राष्ट्र का नेता वह जो उसकी सेवा करे।"

"जो दया नहीं करता उस पर दया नहीं की जाएगी।"

अम्र इब्ने अबसा ने आपसे कुछ बातें पूछीं, आपने उसका अति संक्षिप्त उत्तर दिया। इस छोटे-से वार्तालाप को भी देखते जाइए : –

"इस काम में आपके साथ कौन-कौन थे?"

"एक पराक्रमी (अर्थात हज़रत अबूबक्र) और एक सेवक (अर्थात हज़रत बिलाल)"

"इस्लाम क्या है?"

"अच्छी बात और खाना खिलाना।"

"ईमान क्या है?"

"सब्र और दान।"

"कैसा इस्लाम उत्तम है?"

"उस व्यक्ति का जिसके मुख और जिसके हाथ के अत्याचारों स मुसलमान बचे रहें।"

"कैसा ईमान उत्तम है?"

"जिसके यहां सुन्दर चरित्र पाया जाये।"

"कैसी नमाज़ उत्तम है?"

"जिसमें देर तक विनम्रतापूर्वक खड़ा रहा जाए।"

"कैसी हिजरत उत्तम है?"

"ऐसी कि तुम उन चीज़ों से अलग हो जाओ जो तुम्हारे पालनहार को नापसन्द है।"

"कैसा जिहाद उत्तम है?"

"उस व्यक्ति का जिसका घोड़ा भी मैदान में मारा जाय और ख़ुद भी शहीद हो जाय।"

"कौन-सी घड़ी (उपासना के लिए) सबसे बढ़कर है?"

"रात का पिछला पहर।"

व्यवहार और सामाजिक सम्बन्ध

लगभग हर 'बड़ा' आदमी काम की अधिकता के कारण इस स्थिति में नहीं होता कि वह हर ओर बराबर दृष्टि डाले और जीवन के हर-हर पहलू और हर-हर समस्या पर ध्यान दे सके। ऐसी स्थिति में कुछ लोग या तो किसी एक पहलू को छोड़कर शेष सबसे 'सन्यास' ले लेते हैं, कुछ का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, कुछ दम्भ व अभिमान के शिकार हो जाते हैं, पर आप में, काम की अधिकता होने पर भी, इतिहास की धारा बदलने वाले कारनामों को पूरा करने पर भी, इनमें से कोई बात न पैदा हुई, न पृथकता आई, न दम्भ व अभिमान के शिकार हुए, न चिड़चिड़ापन पैदा हुआ, उत्तम व्यवहार था आपका, और थी हर पहलू और हर समस्या पर आपकी समान दृष्टि।

आप रास्ते में मिलने वालों से 'सलाम' कहते और सलाम करने में पहल करते, यहाँ तक कि एक बार आप लड़कों की टोली से होकर गुज़रे तो सलाम किया, औरतों की ओर से निकले तो सलाम किया। घर में दाखिल होते और निकलते समय घर के लोगों को सलाम करते।

किसी सभा में जाते तो इस बात को नापसन्द करते कि साथी सम्मान में खड़े हों, एक कोने में बैठ जाते, कन्धों पर से फाँद कर बीच में घुसने से बचते, कहते, "मैं उसी तरह उठता-बैठता हूँ जिस तरह खुदा का एक बन्दा उठता-बैठता है।" आप सभा में हरेक को सम्बोधित करते और सभी यह अनुभव करते कि आप उसे ही अधिक चाहते हैं।

किसी से मिलने जाते तो फाटक से दाहिने या बायें खड़े होकर सूचना देने और आज्ञा लेने के लिए तीन बार सलाम कहते। उत्तर न मिलता तो बिना किसी मन-मुटाव के वापस चले आते अगर रात में किसी से मिलने

जाते ता इतनी आवाज़ में सलाम कहते कि अगर वह जागता हो तो सुन ले और सो रहा हो तो नींद में बाधा न पड़े।

रोगियों को देखने मुख्य रूप से जाते। सिरहाने बैठ कर पूछते, "तबियत कैसी है?" रोगी के माथे और नाड़ी पर हाथ रखते, दबाने को पूछते, ढाढस बंधाते और कहते, "चिन्ता की कोई बात नहीं, अल्लाह ने चाहा तो शीघ्र ही स्वस्थ हो जाओगे।"

कोई जब किसी यात्रा से वापस आता तो आप उससे गले मिलते, कभी-कभी माथा चूम लेते। किसी को जब विदा करते तो कहते कि भाई हमें अपनी दुआओं में याद रखना। कभी-कभी प्यार में आप अपने साथियों के नामों को संक्षेप में करके पुकारते जैसे अबूहुरैरा को 'अबाहुर' और हज़रत आइशा को'इश' कहकर पुकारते।

बच्चों से बड़ी दिलचस्पी थी। बच्चों के सिर पर हाथ फेरते, प्यार करते, दुआ करते, कहते "ये बच्चे तो ख़ुदा के बाग के फूल हैं" बच्चों के नाम रखते, उन्हें एक लाइन में खड़ा करके इनामी दौड़ लगवाते कि देखें कौन हमें पहले छू लेता है। बच्चे दौड़ते हुए आते तो कोई सीने पर गिरता कोई पेट पर। आप बच्चों से दिल्लगी भी करते।

बूढ़ों का आदर करते, सेवकों से अच्छा व्यवहार रखते। हज़रत अनस जो आपकी सेवा में दस वर्ष तक रहे, फ़रमाते हैं : –

"मैं दस साल तक आपकी सेवा में रहा और आपने मुझे 'उफ़' तक न कहा। कोई काम जैसा भी किया, नहीं कहा कि ऐसा क्यों किया और काम न किया तो नहीं कहा कि क्यों नहीं किया। यही व्यवहार आपका अन्य सेवकों और सेविकाओं के साथ रहा। आपने इनमें से किसी को कभी नहीं मारा।"

निजी जीवन

प्रायः 'बड़े' लोग वे कहलाते हैं जिनके सामाजिक जीवन व निजी जीवन (Public life & Private life) में बड़ा अन्तर होता है, वे बाहर

कुछ दीख पड़ते और भीतर कुछ, उन्हें बाहर देखिये तो सद्व्यवहार प्रदर्शन है, घर पहुँचे तो नीचता पर उतर आये, बाहर सादगी और विनम्रता दिखाई घर पलटे तो भोग विलास के गर्त में जा गिरे – पर आपको देखिये तो एक ही रंग घर में भी है और घर से बाहर भी।

हज़रत आइशा फ़रमाती है कि : –

आप अपने कपड़ों की देख-भाल ख़ुद ही कर लेते, बकरी का दूध ख़ुद दुहते और अपनी ज़रूरतें स्वयं ही पूरी कर लेते। अपने कपड़ों में पैवन्द लगा लेते, अपने जूतों की मरम्मत कर लेते, और यहाँ तक कि अपनी डोल में टाँके लगा लेते, बोझ उठाते, जानवरों को चारा डालते, कोई सेवक होता तो उनके साथ मिलकर काम करा देते, जैसे आटा पिसवा देते। आपको बाज़ार जाने में कोई झिझक न होती, ख़ुद ही सौदा-सुलफ़ लाते और ज़रूरत की चीज़ें एक कपड़े में बांध कर उठा लाते।

आप घर में सबसे अधिक विनम्रता दिखाते, चेहरे पर सदा मुस्कान खेलती रहती, और सदैव प्रसन्न दीख पड़ते।

घर और उसके साज़ो समान के बारे में आपका दृष्टि कोण यह था कि जीवन ऐसे बिताया जाये जैसे कि एक यात्री बिताता है कि थोड़ी देर तक उसने छाया में बैठकर आराम किया और फिर चल पड़ा अपनी राह को, और फिर जो परलोक के लिये सब कुछ कर रहे हो, जिनका एक-एक क्षण कर्त्तव्य पूरा करने और ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करने में बीत रहा हो, जो एक उच्च उद्देश्य और आदर्श जीवन के लिए जी रहे हों उनके लिए मौक़ा भी क्या है कि भव्य व विराट महल तैयार करायें और उनकी साज-सज्जा का प्रबन्ध करें और फिर उसमें रहकर जीवन का 'आनन्द' लूटें।

यही कारण था कि न आपने और न ही आपके साथियों ने आलीशान इमारतें बनवाईं और न उन्हें साज़ो सामान से सुसज्जित किया। उनके घर बस यात्रियों के डेरे भर थे, ताकि वे गर्मी-सर्दी के प्रभावों से बच सकें, पशुओं के हस्तक्षेप से सुरक्षित रह सकें, एकान्तवास (Privacy) भर किया जा सके और बस – हाँ, इन मकानों में सफ़ाई थी, सुथराई थी और

वे थे स्वास्थ्यवर्द्धक, जिससे उनकी स्वच्छता का भास होता था।

आपके पास साज़ो सामान क्या था, एक लकड़ी का प्याला था जिस पर लोहे के पत्तर लगे थे, चमड़े के गद्दे का एक बिस्तर था, जिसमें खजूर की छाल भरी हुई थी, बान की बुनी हुई चारपाई रखते, टाट का बिस्तर भी इस्तेमाल में रहा, जो दुहरा करके बिछाया जाता, ज़मीन पर चटाई बिछा कर भी लेटते। कभी-कभी तो खरी चारपाई के चिन्ह शरीर पर देखकर साथियों की आँखों में आंसू आ गये।

एक बार हज़रत उमर ने देखा कि आप ख़री चारपाई पर लेटे हैं और शरीर पर जगह-जगह चिन्ह पड़ गये हैं, इधर-उधर देखा तो एक ओर मुट्ठी भर जौ रखे हैं, एक कोने में किसी जानवर की खाल लटक रही है, यह दृश्य देखकर हज़रत उमर की आँखों से आँसू जारी हो गये। आपने रोने का कारण पूछा, तो हज़रत उमर ने बताया :—

"क़ैसर व किसरा* तो सुख-वैभव का भोग करें और आपका यह हाल रहे।"

आपने फ़र्माया :—

"उमर! क्या तुम इस पर ख़ुश नहीं कि वे लोग लोक ले जायें और हमें परलोक मिले।"

खाना-पीना

खाने-पीने की अभिरूचि उत्तम थी। मांस से विशेष रूचि थी, वैसे आपको शहद, सिरका, ख़रबूज़ा, ककड़ी, लौकी, खिचड़ी, मक्खन आदि अधिक पसन्द थे। दूध के साथ खजूर भी खाते और मक्खन लगाकर भी खजूर खाते, ककड़ी नमक लगाकर और ख़रबूज़ा शकर लगाकर भी खाते, मीठा भी अधिक पसन्द था, जौ के सत्तू भी बहुधा खाया करते। एक बार बादाम के सत्तू दिये गये तो यह कह कर वापस कर दिया कि यह धनियों

---

* रूम और ईरान के सम्राट।

ाजिन है। घर में सालन बनता तो कहते कि पड़ोसी को देने के लिये तनिक अधिक बनाया जाये। कच्ची प्याज़ और कच्चा लहसुन कभी पसन्द न किया।

मीठा पानी बहुत पीते। दूध, पानी मिला दूध और शहद का शरबत भी रूचि के साथ पीते। खजूर का बिना नशे वाला पानी भी बहुत पसन्द था।

आप अलग-अलग बैठ कर खाने को नापसन्द करते थे। बड़े बर्तनों में एक साथ बैठ कर खाना आपको अधिक पसन्द था।

आप दस्तरख़ान (ज्योनार) पर हाथ धोने के बाद और जूता उतार कर बैठते, सीधे हाथ से खाना लेते और अपने सामने की ओर से लेते, बीच बर्तन में हाथ न डालते, हर कौर पर अल्लाह का नाम लेते, जो खाना पसन्द न आता, उसे बिना कुछ कहे सुने ही छोड़ देते, अधिक गर्म खाना न खाते। खाना सदा तीन उंगलियों से लेते और उनको लथड़ने न देते। मेहमान (अतिथि) को खाना खिलाते तो बार-बार कहते कि बिना किसी झिझक के अच्छी तरह खाओ। खाकर हाथ धोते और अल्लाह की नेमतों का शुक्र अदा क़रते। खाने की कोई चीज़ अगर कहीं से आती तो आग्रह करके अपने पास मौजूद लोगों को खिलाते और ग़ैरहाजिर मित्रों का हिस्सा रख देते।

पानी 'गट-गट' की आवाज़ निकाले बिना पीते और आम तौर से तीन बार प्याला मुंह से अलग करके साँस लेते और हर बार अल्लाह के नाम से आरम्भ करते और अल्लाह के शुक्र पर ख़त्म करते। आमतौर से बैठ कर पानी पीते। पीने की चीज़ अगर सभा में आती तो दाहिनी ओर से दौर चलाते, बड़े-बूढ़ों को प्रमुखता देते, ख़ुद सब के अन्त में पीते और कहते :—

"पिलाने वाला सब के आख़िर में पीता है।"

उठना-बैठना

कभी उकडूं बैठते, कभी दोनों हाथों से पैरों को लपेट कर बैठते, कभी

हाथों के बजाय कपड़ा लपेट लेते। विचार या चिन्..
ज़मीन को लकड़ी से खोदते रहते। सोने के लिये सीधी करव८
दाहिने हाथ की हथेली पर दाहिना गाल रख कर लेटते, कभी चित ~.
लेट जाते और पाँव पर पाँव रख लेते। पट लेटना अधिक नापसन्द था। ऐसे अन्धेरे घर में सोना पसन्द न था जिसमें चिराग़ भी न जलाया गया हो। खुली छत पर जिसकी पर्दे की दीवार न हो सोना अच्छा न समझते। सोने के लिये एक तहमद अलग से था, कुर्ता उतार कर टांग देते।

भावनायें

वह मनुष्य मनुष्य नहीं जिसमें भावनायें न हों। यह मानव प्रकृति है और इसे दबाना या कुचलना न इस्लाम का सिद्धान्त रहा है और न ही आपके जीवन-चरित्र से इसका कोई प्रमाण मिलता है। आप प्रसन्नता में प्रसन्न और दुख में दुखी भी होते।

फिर आप उन कथित बड़े लोगों में से भी न थे जो दुनिया भर के लोगों की चिन्ता में घुले जाते हैं, पर घर के लिये क्रूर और भावनाहीन सिद्ध होते हैं, बाहर का जीवन भरा-पुरा और घर का फीका और नीरस।

आपको अपनी पत्नियों के साथ सच्चा प्रेम था। हज़रत आइशा के साथ एक ही बर्तन में पानी पीते, जहाँ वह मुंह लगातीं, वहीं मुंह लगाते। अन्सार की बच्चियों को बुलवाते ताकि वे उनके साथ खेलें।

अपने बच्चों के सिलसिले में भी आपकी भावनायें बड़ी तीव्र थीं। हज़रत इब्राहीम को दूध पिलाने के सिलसिले में मदीने के बाहर एक लोहार के यहाँ रख दिया था, उनको देखने के लिये आप एक बड़ी दूरी तै करके जाते। आपकी सुपुत्री हज़रत फ़ातिमा आतीं तो आप उठकर स्वागत करते, अपनी कहते, उनकी सुनते। अपने नातियों हज़रत हसन और हज़रत हुसैन से आपका अधिक प्रेम थां, उनको गोद में लेते, कन्धे पर सवार करते, उनके लिये घोड़ा बनते। एक बार हज़रत अकरा न आपको हज़रत हसन को चूमते हुए देखा तो चकित होकर पूछा, मेरे तो दस बेटे हैं, मैंने कभी

किसी को प्यार नहीं किया, पर आप तो चूमते हैं।"

फ़र्माया, "जो दया नहीं करता, उस पर दया नहीं की जाती।"

हँसी-मज़ाक़

काम की अधिकता कहिये या अपने बड़े होने का अहसास, कि बहुधा तथाकथित 'बड़ों' का जीवन हास्य-रस से वंचित, पूर्णरूपेण शुष्क हो जाता है, या फिर वे हंसी-मज़ाक़ करते हैं, तो वह हंसी-मज़ाक़ न होकर उपहास और निन्दा की सीमाओं में दाख़िल हो जाता है पर आप हंसमुख थे, इसलिये हँसी-मज़ाक़ करते थे, पर किसी का मन दुखाकर नहीं, या किसी की खिल्ली उड़ा कर नहीं।

आप हँसते-हँसाते और सभा में मुस्कान क्रीड़ा करने लगती, पर सन्तुलन और सम्भार को सदा ध्यान में रखा। मज़ाक़ का रंग आटे में नमक की तरह हल्का रहता और उसमें भी न तो असत्य कोई बात कही, न किसी के मन को दुखी किया और न ही ठहाका लगाकर हंसना आपको पसन्द था, अधखिले फूलों की मुस्कान होती जो आपके चेहरे पर दौड़ जाती।

यहाँ कुछ नमूने दिये जा रहे हैं, देखिये कितने शुद्ध व पवित्र मज़ाक़ हैं :—

एक बार किसी मांगने वाले ने आपसे सवारी का ऊँट माँगा। कहने लगे :—

"हम तुम्हें ऊँटनी का एक बच्चा देंगे।"

"मैं इसे लेकर क्या करूंगा!" वह चकित था।

"हर ऊँट किसी ऊँटनी का बच्चा ही तो होता है।" आपने समझाया।

एक अवसर पर जब कि सभा लगी हुई थी, खजूरें खाई जा रही थीं। आप हंसी के तौर पर गुठलियाँ निकाल-निकाल कर हज़रत अली के आगे डालते रहे। अन्त में गुठलियों के ढेर की ओर संकेत करके उनसे कहा :—

"तुमने तो बहुत खजूरें खालीं।"

"हाँ मैंने गुठलियाँ निकाल-निकाल कर खाई हैं और आप लोग तो उसे भी चट कर गये।" हज़रत अली का जवाब था यह।

ये और इसी प्रकार के अनेकों हंसी-मज़ाक इतिहास की पुस्तकों में भरे पड़े हैं। लोग आपके जीवन के इस पहलू को सुनते हैं तो आश्चर्य होता है, इसलिये कि आज धार्मिक गुरूओं और धर्मात्माओं का जो शुष्क और नीरस जीवन हमारे सामने है और उनकी जिस रोनी सूरत का सामना हमें करना पड़ता है, उसको दृष्टि में रखकर हम हंसी-मज़ाक का विचार तक नहीं कर सकते, फिर आपकी रात-रात भर की उपासना, ईश-भक्ति, भारी ज़िम्मेदारियाँ और आपकी चिन्ताओं को देखते हुए तो और भी हमें विश्वास नहीं होता — पर वस्तुस्थिति ऐसी थी कि आपने हंस कर यह बता दिया कि धार्मिकता और हंसी-मज़ाक में कोई विरोध नहीं।

अन्य रूचियां

निजी तौर पर आपको बाग़ों की सैर का शौक था। तैरने में भी रूचि थी और मित्रों के साथ कभी-कभी तालाब में तैरा करते। दौड़ों का मुक़ाबला कराते, धनुष-वाण का अभ्यास कराते, अखाड़े में भी पूरी दिलचस्पी से शरीक होते।

प्रसन्नता के अवसर पर आप पसन्द करते थे कि दफ़ (एक बाजा) बजायें, गायें या बच्चियाँ गीत गालें। आपने कविता में भी अपनी दिलचस्पी दिखाई है। अच्छी कविताओं का आप आदर करते।

सवारियों में से आपको घोड़ा बहुत पसन्द था। घोड़े की आँख, मुँह, नाक की बड़ी ही रूचि के साथ अपने हाथों से साफ़ करते।

एक बात

आपकी इन रूचियों, दिलचस्पियों और मनोरंजनों से किसी को यह

भ्रम नहीं होना चाहिये कि आप बस यही कुछ थे, सच तो यह है कि आपका जीवन एक बड़े उद्देश्य के लिये वक़्फ़ था, आपकी रातें, आपके दिन, तात्पर्य यह कि आपका एक-एक क्षण एक ऐसे मार्ग में बीत रहा था जिसमें ईश-प्रसन्नता थी और थी लोक-परलोक दोनों की सफलता। रात-रात भर आपका उपासनाओं में व्यस्त रहना, दिन-दिन भर ईश-धर्म के प्रचार व प्रसार में लीन रहना, न खाने की सुध, न पीने की चिन्ता, न दिन का चैन, न रात का आराम आख़िर इन चीज़ों को दृष्टि में रखने से जो व्यक्तित्व उभरता है, और फिर शुद्ध चरित्र और उच्च-आचरण का जो आदर्श आपने प्रस्तुत किया, अरब वालों को ही क्या पूरे जग को जो सन्देश दिया, एक जाति ही क्या, पूरी मानवता पर जो उपकार किये, उसे भी सामने रखिये कि इससे जो व्यक्तित्व जन्म लेता है, उसे अगर विश्वनायक की उपाधि न दी जाये तो क्या दी जाये, आप स्वयं विचार कीजिये।